

लघुसिद्धान्तकौमुदी

अजन्तपुंल्लिङ्ग-प्रकरणम्

संकेत - संज्ञाप्रकरण के अन्त में 'सुप्तिङन्तं पदम्' सूत्र में पद की परिभाषा बतायी गयी थी कि जिसके अन्त में सुप् या तिङ् प्रत्यय हो उसे पद कहते हैं। सुप् २१ विभक्ति-प्रत्ययों का संक्षिप्त नाम है। इन प्रत्ययों का उल्लेख भी उपर्युक्त सूत्र की व्याख्या में किया गया था। सामान्यतः आजकल संस्कृत पढ़ने में आरम्भ में 'रामः रामौ रामाः' आदि शब्दों के रूप रटने होते हैं। किन्तु 'रामः' शब्द कैसे बना यह स्पष्ट नहीं होता। 'राम' से 'सु' प्रत्यय लगाकर 'रामः' बना है। इसी प्रकार सभी विभक्तियों के रूप प्रत्यय लगाने पर बनते हैं। प्रस्तुत प्रकरण में इन प्रत्ययों के लगाने के नियम बताये गये हैं।

शब्दों के वर्णसंघटना की दृष्टि से दो भेद होते हैं -

१. शब्द के अन्त में कोई स्वर (अच्) होता है, जैसे राम, हरि, शम्भु। ऐसे शब्दों को अजन्त (अच् + अन्त = जिसके अन्त में स्वर है) कहते हैं।

२. शब्द के अन्त में कोई व्यञ्जन (हल्) होता है, जैसे - सुहृद्, राजन्। ऐसे शब्दों को हलन्त (हल् + अन्त = व्यञ्जनान्त) कहते हैं।

दोनों प्रकार के शब्द तीनों लिङ्गों (पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग) में होते हैं।

प्रातिपदिक संज्ञा-प्रथम नियम-

११६. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १। २। ४५

धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तञ्च वर्जयित्वाऽर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात्।

धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त को छोड़कर अर्थ से युक्त शब्दरूप को प्रातिपदिक कहते हैं।

[सूत्रार्थ-अर्थवद = अर्थ से युक्त। अधातुः = जो धातु न हो। अप्रत्ययः = जो प्रत्यय न हो और प्रत्ययान्त = प्रत्यय से अन्त होने वाला न हो।

प्रातिपदिकम् = प्रातिपदिक कहलाता है ।}

इस प्रकार प्रातिपदिक शब्द का वह रूप है -

१. जो अर्थ से युक्त हो।
२. जो धातु न हो।
३. जो प्रत्यय न हो।
४. जो प्रत्ययान्त न हो।

किन्तु शब्द दो प्रकार के होते हैं (१) व्युत्पन्न (२) अव्युत्पन्न। व्युत्पन्न में धातु से प्रत्यय लगा होता है। उसमें प्रकृति और प्रत्यय का विभाग होता है। अव्युत्पन्न में इस प्रकार का प्रकृति-प्रत्यय का विभाग नहीं होता है।

प्रत्ययान्त शब्दों को भी प्रातिपदिक संज्ञा होती है इसके लिए दूसरा सूत्र दिया गया है -

प्रातिपदिक संज्ञा-दूसरा नियम-

११७. कृत्तद्धितसमासाश्च १। २। ४६

कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च तथा स्युः।

कृत् प्रत्यय से अन्त होने वाले, तद्धित प्रत्यय से अन्त होने वाले शब्द-रूप और समास भी प्रातिपदिक होते हैं।

[सूत्रार्थ-कृत् + अन्त = कृदन्त, जिस शब्द के अन्त में कृत् प्रत्यय हो; जैसे घञ्, तृच्, शानच्, शतृ आदि। तद्धित + अन्त = तद्धितान्त = जिसके अन्त में तद्धित प्रत्यय हो, जैसे अण् छ आदि। 'प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्याः' से प्रत्यय का उल्लेख होने पर प्रत्यय से अन्त होने वाले शब्द का भी ग्रहण होगा। समासाः च = और समास शब्द भी प्रातिपदिक होते हैं। पहले सूत्र से अर्थवत् भी ग्रहण किया जायेगा = जो अर्थ से युक्त हो। }

प्रातिपदिक से निम्नलिखित २१ प्रत्यय होते हैं, जिनमें प्रथम 'सु' तथा अन्तिम 'सुप्' के प् को लेकर 'सुप्' प्रत्याहार बनाया गया है जो सभी का बोधक है।

◆ सुप् प्रत्यय -

११८. स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङ-
सोसांङ्योस्सुप् ४। १। २।

सु औ जस् इति प्रथमा। अम् औट् शस् इति द्वितीया।
टा भ्याम् भिस् इति तृतीया। ङे भ्याम् भ्यस् इति चतुर्थी।
ङसि भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी। ङस् ओस् आम् इति षष्ठी।
ङि ओस् सुप् इति सप्तमी।

११९. ङ्याप्प्रातिपदिकात् ४। १। १

१२०. प्रत्ययः ३। १। १

१२१. परश्च ३। १। २

इत्यधिकृत्य। ङ्यान्तादाबन्तात् प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः
स्युः।

ये तीनो सूत्र अधिकार सूत्र है। सुप् आदि २१ प्रत्यय ङ्यन्त, आबन्त
तथा प्रातिपदिक से परे होते हैं।

(१) ङ्यन्त - जिस शब्द के अन्त में 'ङी' अर्थात् 'ङीप्', 'ङीष्', 'ङीन्'
स्त्रीलिंग प्रत्यय हों।

(२) आबन्त - जिस शब्द के अन्त में 'आप्' अर्थात् टाप्, डाप्, चाप्
स्त्रीलिंग प्रत्यय हों।

(३) प्रातिपदिक - जिसकी परिभाषा 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्'
तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्रों में की गयी हैं।

सुप् आदि २१ प्रत्यय उन शब्दों से परे होते हैं जिनमें स्त्रीलिंग प्रत्यय
(ङीप्, ङीष्, ङीन्, टाप्, डाप्, चाप्) लगे हों अथवा जो प्रातिपदिक हों।

१२२. सुप्: १। ४। १०३

सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकशः एकवचन-द्विवचन- बहुवचनसंज्ञानि स्युः ।

सुप् प्रत्ययों के तीन-तीन में प्रत्येक समूह को एकवचन, द्विवचन, बहुवचन संज्ञा होती है ।

सुप् प्रत्ययों के तीन-तीन वर्ग करने पर सात वर्ग होते हैं । इन सात वर्गों को प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी विभक्ति कहते हैं । प्रत्येक में एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन संज्ञाएँ होती हैं ।

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु	औ	जस्
द्वितीया	अम्	औट्	शस्
तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	डे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	डसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	डस्	ओस्	आम्
सप्तमी	डि	ओस्	सुप्

प्रश्न है कि एकवचन कब होता है और द्विवचन कब होता है ? इसके लिए अग्रिम सूत्र है -

१२३. द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १। ४। २२

द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः ।

दो और एक के विषय में कहने का अभिप्राय होने पर क्रमशः द्विवचन और एकवचन होता है ।

[सूत्रार्थ - द्व्येकयोः = (द्वि + एक षष्ठी द्विवचन) = दो और एक की

विवक्षा होने पर। द्विवचनैकवचने = द्विवचन + एकवचन, द्विवचन और एकवचन होता है। }

जब दो के विषय में कहना अभिप्रेत होता है तब द्विवचन और जब एक के विषय में कहना अभिप्रेत होता है तब एकवचन होता है।

◆ अवसान संज्ञा

१२४. विरामोऽवसानम् १। ४। ११०

वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात्। रुत्वविसर्गो, रामः।

वर्णों के अभाव को अवसान कहते हैं।

जब विराम अर्थात् किसी वर्ण का उच्चारण नहीं होता है तब अवसान संज्ञा होती है।

शब्दों के विषय में अव्युत्पत्तिवाद के विद्वानों के अनुसार कोई संज्ञा अपनी समुदाय-शक्ति से ही बोध कराती है। उसके अवयवों का अलग अर्थ नहीं होता। व्युत्पत्तिवाद के अनुसार अवयवों का अर्थ होता है, उससे शब्द का अर्थ निकलता है अर्थात् प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति होती है। उसे धातु से व्युत्पन्न समझना चाहिये। दोनों प्रकार की प्रातिपदिक संज्ञा को (१) अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्, (२) कृतद्धितसमासाश्च, में परिभाषा कर दी गयी है।

अकारान्त पुल्लिङ्ग 'राम'

'राम' अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द है, अव्युत्पत्तिवाद के अनुसार 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' से इसकी प्रातिपदिक संज्ञा होगी, किन्तु व्युत्पत्तिवाद के अनुसार (रम्. + घञ् प्रत्यय) प्रत्ययान्त होने से 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' से प्रातिपदिक संज्ञा न होकर 'कृतद्धितसमासाश्च' से कृदन्त राम की प्रातिपदिक संज्ञा होने पर 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्', 'प्रत्ययः' 'परश्च' सूत्रों से 'स्वौजसमौट्' आदि सुप् प्रत्यय प्राप्त हुए। एक 'राम' की विवक्षा होने पर -द्व्येकयोद्विवचनैकवचने' से एकवचन में 'राम सु' हुआ।

६ - 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से 'सु' के उ की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से इत्संज्ञक का लोप - रामस् ।

'सुप्तिङन्तं पदम्' से 'रामस्' की पदसंज्ञा हुई ।

'ससजुषोःरुः' से पदान्त स् को रु आदेश हुआ-रामरु 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से 'उ' की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप-रामर् । 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' सूत्र से अवसान पर रहते 'रामर्' के अन्तिम र को विसर्ग हुआ - रामः ।

दो राम की विवक्षा होने पर 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' से द्विवचन में 'राम राम औ' । तदुपेसन्त -

१२५. सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ १। २। ६४

एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते ।

एक ही विभक्ति के परे रहने पर समान रूप वाले जितने शब्द होते हैं उनमें एक ही शब्द अवशिष्ट रहता है ।

{ सूत्रार्थ - सरूपाणाम् = समान रूप वाले शब्दों में । एकशेषः = एक ही शेष रहता है । एकविभक्तौ = एक ही विभक्ति के परे रहने पर । }

अतः 'राम राम औ' में एक ही विभक्ति 'औ' के परे रहते समान रूप वाले 'राम-राम' में एक शेष रहेगा - 'राम औ' अब 'वृद्धिरेचि' से पूर्व और, पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश प्राप्त हुआ ।

◆ पूर्वसवर्ण दीर्घ आदेश का नियम

१२६. प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६। १। १०२

अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात् ।

इति प्राप्ते -

अक् (अ इ उ ऋ लृ) के बाद प्रथमा और द्वितीया के प्रत्यय का अच् आये, तो पूर्व और पर दोनों के स्थान पर पूर्वसवर्ण दीर्घ आदेश होता है ।

[इस सूत्र में 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से अक् की तथा 'इको यणचि' से 'अचि' की अनुवृत्ति होती है।]

इस सूत्रानुसार 'राम + औ' में 'अ + औ' के स्थान पर पूर्वसवर्ण दीर्घ 'आ' एकादेश प्राप्त हुआ।

◆ किन्तु अग्रिम सूत्र निषेध करता है

१२७. नाऽऽदिचि ६। १। १०४

आत् इचि न पूर्वसवर्णदीर्घः। वृद्धिरेचि—रामौ।

अवर्ण के बाद इच् (अ को छोड़कर अन्य स्वर) होने पर पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश नहीं होता।

{ सूत्रार्थ—न आत् इचि। आत् = अवर्ण के बाद। इचि = इच् परे रहने पर। न = पूर्वसवर्णदीर्घ न हो। }

अतः 'राम + औ' में 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से दीर्घ एकादेश नहीं होगा। 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि एकादेश होगा—रामौ।

'राम' से प्रथमा बहुवचन का प्रत्यय 'जस्' आने पर अब बहुवचन किसे कहते हैं यह स्पष्ट किया गया है—

◆ बहुवचन संज्ञा

१२७. बहुषु बहुवचनम् १। ४। २१

बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात्।

बहुत्व अर्थात् दो से अधिक के विषय में कहना अभिप्रेत होने पर बहुवचन होता है।

दो से अधिक राम की विवक्षा होने पर प्रथमा बहुवचन में 'राम राम राम जस्' हुआ। 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' सूत्र से एक विभक्ति 'जस्' के परे रहते केवल एक 'राम' शब्द अवशिष्ट होगा—राम + जस्।

◆ इत्संज्ञा का नियम

१२६. चुटू १।३।७

प्रत्ययादौ चुटू इतौ स्तः।

प्रत्यय के आरम्भ में आने वाले चवर्ग और टवर्ग के वर्ण की इत्संज्ञा होती है।

[सूत्रार्थ - चु = चवर्ग की। टु = टवर्ग की। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत् से 'इत् = इत्संज्ञा होती है। 'षाः प्रत्ययस्य' सूत्र से प्रत्ययस्य = प्रत्यय के। 'आदि-र्जिटुडवः' से आदि = आदि में स्थित की अनुवृत्ति होती है।]

इस सूत्र से 'राम + जस्' के आदि में आये चवर्ग वर्ण ज् की इत्संज्ञा हुई। 'तस्य लोपः' से लोप हुआ - 'राम + अस्'। 'हलन्त्यम्' से 'जस्' के स् की भी इत्संज्ञा प्राप्त थी, किन्तु आगे का नियम इसका निषेध करता है।

प्रसंगवश विभक्ति किसे कहते हैं, यह स्पष्ट किया गया है।

◆ विभक्तिसंज्ञा

१३०. विभक्तिश्च १।४।१०४

सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः।

सुप् (अर्थात् सु आदि २१ प्रत्यय) तथा तिङ् (तिप् आदि १८ प्रत्यय) की विभक्ति संज्ञा होती है।

इन दो प्रकार के प्रत्ययों को विभक्ति कहते हैं। (१) सुप् = प्रातिपदिक से लगने वाले प्रत्यय; (२) तिङ् = धातु से लगने वाले प्रत्यय।

◆ इत्संज्ञा के निषेध का नियम

१३१. न विभक्तौ तुस्माः १।३।४

विभक्तिस्थास्तवर्ग-सकार-मकाराः नेतः।

इति सस्य नेत्वम्। रामाः।

विभक्ति में आये हुए तवर्ग के वर्ण की, स् और म् की इत्संज्ञा नहीं होती है। अतः राम+अस् में स् की इत्संज्ञा नहीं होगी।

[सूत्रार्थ - विभक्तौ = विभक्ति में आये, सुप् और तिङ् प्रत्ययों में आये हुए। तुस्माः = तु+स्+माः = तवर्ग, स् और म् की। न = इत्संज्ञा नहीं होती।]

राम्+अस् में 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हुआ - रामास्। 'ससजुषो रुः' से पदान्त स् को रु आदेश हुआ - रामारु। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से उ की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप-रामार्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से अवसान परे रहते र् को विसर्ग आदेश हुआ - रामाः।

सम्बोधन में एकवचन को 'सम्बुद्धि' कहते हैं।

◆ सम्बुद्धि संज्ञा

१३२. एकवचनं सम्बुद्धिः २। ३। ४६

सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात्।

सम्बोधन में प्रथमा के एकवचन को सम्बुद्धि संज्ञा होती है। 'राम सु' में सम्बोधन में प्रथमा के एकवचन अर्थात् 'सु' की सम्बुद्धिसंज्ञा होगी।

◆ अङ्ग संज्ञा। अङ्ग किसे कहते हैं ?

१३३. यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् १। ४। १३

यः प्रत्ययो यस्मात्क्रियते तदादिशब्दस्वरूपं तस्मिन्नङ्गं स्यात्।

जो प्रत्यय जिस शब्द से विहित होता है, वह शब्द जितने शब्द-स्वरूप के आरम्भ में होता है उस शब्द-स्वरूप को प्रत्यय के परे रहते अङ्ग कहते हैं।

विवेचन - प्रत्यय का किसी शब्दरूप के आगे विधान किया जाता है, उस शब्द से कुछ और भी वर्ण जुट सकते हैं, जैसे आगम द्वारा उस शब्द और प्रत्यय के बीच में कुछ वर्ण या वर्णसमूह आ सकते हैं। इस प्रकार मूल रूप में जो शब्द था वह कुछ बड़ा हो जाता है, इस प्रकार वह मूल शब्द जितने के आदि में रहता है उस समूचे को प्रत्यय के परे रहते अङ्ग कहते हैं।

उदाहरण - भू धातु से तिप् प्रत्यय करने पर 'भू ति' हुआ। इसमें 'शप्' का आगम होता है जिसमें 'अ' वचता है - 'भू अ ति' हुआ। जिससे प्रत्यय का विधान हुआ था वह 'भू' है। जो 'भू' 'अ' के आदि में है अतः 'भू अ' की अंगसंज्ञा हुई।

'राम+सु' 'राम' की ही अंगसंज्ञा हुई।

सम्बुद्धिसंज्ञा और अंगसंज्ञा को प्रसंगवश स्पष्ट कर अब 'राम+सु' के विषय में नियम का निर्देश किया गया है।

◆ सम्बुद्धि हल् के लोप का नियम

१३४. एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ६। १। ६६

एङन्ताद् ह्रस्वान्ताच्चाङ्गाद्धल् लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत्।

हे राम, हे रामौ, हे रामाः।

एङन्त और ह्रस्वान्त अंग से परे सम्बुद्धि के हल् का लोप होता है।
एङन्त = जिस अंग के अन्त में ए, ओ हो। ह्रस्वान्त - जिस अंग के अंत में ह्रस्व स्वर हो उससे परे सम्बुद्धि प्रत्यय 'सु' का हल् (व्यञ्जनमात्र) हो तो उसका लोप होता है।

हे राम सु में 'उ' की 'उपदेशोऽजनुसिक इत्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप करने पर 'हे रामस्' हुआ। 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' से स् का लोप हो गया - हे राम सिद्ध हुआ।

सम्बोधन द्विवचन में तथा बहुवचन में प्रथमा के समान ही रूप होते हैं - हे रामौ, हे रामाः।

द्वितीया में 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' से एक राम की विवक्षा में 'राम+अम्' हुआ। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश प्राप्त हुआ, किन्तु अग्रिम सूत्र से पूर्वरूप एकादेश होगा -

१३५. अमि पूर्वः ६। १। १०७

अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः।

अक् के बाद 'अम्' प्रत्यय का स्वर परे हो तो पूर्व और पर दोनों के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होता है।

{ सूत्रार्थ — 'अकः सवर्णे दीर्घः' से 'अकः' लिया गया। 'इको यणचि' से अचि। इस प्रकार अर्थ हुआ — अक् से परे अमि = अम् का। अचि = स्वर हो तो पूर्व = पूर्वरूप एकादेश हो। }

अतः 'राम+अम्' पूर्वरूप एकादेश होकर 'रामम्' हुआ।

द्वितीया के द्विवचन में 'राम+औट्' में ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप—राम औ। 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि एकादेश। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से वृद्धि का निषेध कर पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश प्राप्त हुआ। 'नाऽऽदिचि' से पूर्वसवर्ण दीर्घ का निषेध। 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि एकादेश होकर — रामौ।

द्वितीया बहुवचन में 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र से दो से अधिक 'राम' की विवक्षा में 'राम+शस्' होने पर 'हलन्त्यम्' से स् की इत्संज्ञा प्राप्त थी, किन्तु 'न विभक्तौ तुस्माः' से स् की इत्संज्ञा नहीं होती। 'शस्' के श की इत्संज्ञा होती है इसके लिए अग्रिम सूत्र है —

◆ इत्संज्ञा

१३६. लशक्वतद्धिते १। ३। ८

तद्धिवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतः स्युः।

तद्धित को छोड़कर प्रत्यय के आदि में स्थित ल, श् कवर्ग की इत्संज्ञा होती है।

{ सूत्रार्थ = ल+श+कु=ल्.श, कवर्ग। अतद्धिते=तद्धित को छोड़कर 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से 'इत्' की, 'आदिर्जिटुडक्' से 'आदि' और 'प्रत्ययस्य' से प्रत्ययस्य की अनुवृत्ति होती है। }

'राम+शस्' में श् की इत्संज्ञा हुई और 'तस्य लोपः' से लोप हुआ— 'राम+अस्'। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्णदीर्घ होकर 'रामास्' हुआ।

१३७. तस्माच्छसो नः पुंसि ।

पूर्वसवर्णदीर्घात् परो यः शसः सस्तस्य नः स्यात् पुंसि ।

पूर्ववर्णदीर्घ से परे जो शस् का स् हो उसे पुल्लिङ्ग में न होता है ।

{ सूत्रार्थ - तस्मात् = उस पूर्वसवर्णदीर्घ के बाद । शसः = शस् के स्थान पर अर्थात् शस् के स् के स्थान पर । नः = न् आदेश हो, पुंसि = पुल्लिङ्ग में । }

‘रामास्’ में पूर्वसवर्णदीर्घ से परे स् को न् हुआ - रामान् ।

◆ न् को ण् आदेश नियम

१३८. अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ट् । ४ । २

अट्-कवर्ग-पवर्ग-आङ्-नुम् एतैर्व्यस्तैर्यथासम्भवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः समानपदे । इति प्राप्ते -

एक ही पद में र और ष के बाद न् को ण् होता है, भले ही बीच में अट् प्रत्याहार का वर्ण, कवर्ग, पवर्ग का वर्ण आङ्, नुम् में से एक का व्यवधान हो, या एक से अधिक का अथवा इनमें से सभी का व्यवधान हो ।

{ सूत्रार्थ - अट्, कु, पु, आङ्, नुम्, व्यवायेऽपि=अट् प्रत्याहार के वर्ण, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् का व्यवधान होने पर भी, एक का, अनेक या सभी का व्यवधान होने पर भी । ‘रषाभ्यां नो णः समानपदे’ सूत्र से एक ही पद में न् को ण् होता है । }

रामान् में र से परे न् को ण् आदेश प्राप्त हुआ ।

१३९. न पदान्तस्य । ट् । ३ । ३७

नस्य णो न । रामान् ।

पद के अन्त में आये हुए न् को ण् आदेश नहीं होता है ।

अतः ‘रामान्’ के न् को ण् आदेश नहीं होगा । रामान् सिद्ध हुआ ।

तृतीया एकवचन में 'राम+टा' होने पर

१४०. टाडसिडसामिनात्स्याः ।

अदन्तात् टादीनामिनादयः स्यु ।

अकारान्त अंग से परे टा, डसि, डस् के स्थान पर (क्रमशः) इन, आत् तथा स्य आदेश हो ।

{सूत्रार्थ - टा-डसि-डसाम् (षष्ठी बहुवचन) टा, डसि, डस् के स्थान पर । इन-आत्-स्याः = इन, आत्, स्य आदेश हो ।}

'यथाङ्ग्यमनुदेशः समानाम्' नियम से यह आदेश क्रमानुसार होता है । 'टा' के स्थान पर इन । 'डसि' के स्थान पर आत् । 'डस्' के स्थान पर स्य । 'अनेकालशित् सर्वस्य' सूत्रानुसार ये आदेश अनेकाल् (कई वर्णों वाले) हैं अतः सम्पूर्ण के स्थान पर होते हैं ।

'राम+टा' में 'राम' अकारान्त अंग है, अतः 'टा' को 'इन' आदेश हुआ । राम+इन । 'आदगुणः' से गुण एकादेश हुआ - 'रामेन', 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से न् को ण् होकर रामेण सिद्ध हुआ ।

तृतीया द्विवचन में 'राम+भ्याम्' होने पर -

१४१. सुपि च ७ ।३ ।१०२

यजादौ सुपि अतोऽङ्गस्य दीर्घः । रामाभ्याम् ।

यञ् प्रत्याहार (य व र ल, पञ्चम वर्ण, झ् भ्) से आरम्भ होने वाला सुप् प्रत्यय परे हो तो अकारान्त अंग को दीर्घ होता है ।

भ्याम् कां भ् यञ् प्रत्याहार का वर्ण है, अतः यजादि प्रत्यय परे रहते अकारान्त अंग को दीर्घ होगा । रामाभ्याम् ।

स्मरणीय है कि 'भ्याम्' के म् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा प्राप्त होने पर 'न विभक्तौ तुस्माः' से निषेध हो जायेगा ।

तृतीया बहुवचन में 'राम+भिस्' होने पर -

१४२. अतो भिस् ऐस् ७। १। ६

अनेकाल् शित् सर्वस्य । रामैः ।

अकारान्त अङ्ग से परे भिस् के स्थान पर ऐस् का आदेश होता है ।

'ऐस्' अनेकाल आदेश है, अतः सम्पूर्ण के स्थान पर होगा - 'राम+ऐस्' होने पर 'वृद्धिरेचि' से पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश । 'रामैस्' 'सुप्तिङन्तं पदम्' से 'रामैस्' की पदसंज्ञा होने पर, 'ससजुषो रुः' से पदान्त स् को 'रु' । 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से 'उ' की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप-रामैर् । 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग - रामैः ।

चतुर्थी एकवचन में राम+डे' होने पर

१४३. डेर्यः ७। १। १३

अतोऽङ्गात्परस्य डेर्यादेशः स्यात् ।

अकारान्त अङ्ग से परे 'डे' के स्थान पर 'य' आदेश होता है ।

[सूत्रार्थ - डेः = डे + षष्ठी एकवचन = डे के स्थान पर । यः = य आदेश हो । 'अतो भिस् ऐस्' से अतः = अकारान्त अङ्ग से परे ।]

इस सूत्र में डे के स्थान पर 'य' आदेश हुआ - 'अनेकाल् शित् सर्वस्य' से सम्पूर्ण के स्थान पर आदेश हुआ । 'राम य' अब 'सुपि च' से 'राम' के 'अ' को दीर्घ करना है, किन्तु प्रश्न है कि 'डे' तो सुप् के अन्तर्गत है, 'डे' के स्थान पर आदेश करके जो 'य' हुआ है उसे सुप् प्रत्यय मानेंगे या नहीं ? इसी का निर्णय अगले सूत्र में किया गया है -

१४४. स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ १। १। ५६

आदेशः स्थानिवत् स्यात्, न तु स्थान्यलाश्रयविधौ ।

इति स्थानिवत्त्वात् 'सुपि च' इति दीर्घः । रामाय । रामाभ्याम् ।

आदेश स्थानी के समान ही माना जाता है, किन्तु स्थानी अल (वर्ण) के विषय में कोई कार्य करना हो तब आदेश स्थानी के समान नहीं होता है ।

{ 'अनल्विधौ' का चार प्रकार से विग्रह कर चार स्थानों पर आदेश स्थानी के समान नहीं माना जाता (१) अल विधि: (अल् द्वारा विधि तृतीया तत्पुरुष) जब स्थानी अल् द्वारा कोई विधि हो। (२) अल: विधि: (पञ्चमी तत्पुरुष) जब स्थानी अल् से परे कोई विधि करनी हो। (३) अल: विधि: (षष्ठी तत्पुरुष) जब स्थानी अल् के स्थान पर कोई विधि करनी हो। (४) अलि विधि: (सप्तमी तत्पुरुष) जब स्थान अल् के परे रहते कोई कार्य करना हो।

निष्कर्षतः संज्ञा के सन्दर्भ में, जो संज्ञा स्थानी की होगी, वही संज्ञा आदेश की भी होगी। इस प्रकार डे के स्थान पर 'य' भी सुप् विभक्ति और यज्ञादि है।

स्थानिवत् होने से 'सुपि च' से राम य में 'राम' के अ को दीर्घ होकर रामाय रूप सिद्ध होगा।

चतुर्थी द्विवचन में 'राम+भ्याम्' होने पर 'न विभक्तौ तुस्माः' से स् की इत्संज्ञा नहीं होगी। तब -

१४५. बहुवचने झल्येत् ७।३। १०३

झलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यैकारः स्यात्। रामेभ्यः।

झलादि (अर्थात् झल् प्रत्याहार से आरम्भ होने वाला) बहुवचन का सुप् विभक्ति प्रत्यय परे हो, तो अकारान्त अंग के अन्तिम 'अ' को 'ए' आदेश होता है।

{ सूत्रार्थ - बहुवचने = बहुवचन का। झलि = झल् से आरम्भ होने वाला। 'सुपि च' से सुपि = सुप् विभक्ति प्रत्यय परे हो। अतः 'अतो दीर्घो यजि' से अकारान्त अङ्ग के अन्तिम 'अ' को एत् = ए आदेश हो। }

'राम+भ्यस्' में झलादि भ्यस् के परे रहते 'राम' के अन्तिम 'अ' को 'ए' होगा। रामेभ्यस्।

'सुप्तिङन्तं पदम्' से पदसंज्ञा होकर 'ससजुषो रुः' से स् को रु आदेश, 'उपदेशोऽजनुनासिक इत्' से उ की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप। 'रामेभ्यर्'। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् का विसर्गः - रामेभ्यः।

पञ्चमी एकवचन में 'राम+ङसि' होने पर 'टाङसिङसामिनात्स्याः' से 'ङसि' के स्थान पर 'आत्' आदेश हुआ। 'अनेकाल् शित् सर्वस्य' से वह आदेश सम्पूर्ण के स्थान पर होगा। 'राम+आत्' 'अकः सवर्णे दीर्घः' से सवर्ण दीर्घ एकादेश-रामात्। 'इलां जशोऽन्ते' से पद के अन्त में त् को द् आदेश हुआ किन्तु अग्रिम सूत्र से यह आदेश विकल्प से होगा।

१४६. वाऽवसाने ऋ । ५ । ५६

अवसाने इलां चरो वा स्युः । रामात्, रामाद् ।

रामाभ्याम् । रामेभ्यः । रामस्य ।

अवसान परे होने पर इल को विकल्प-से चर् होता है।

अतः त् को विकल्प से द् होगा। रामात्, रामाद् ।

पञ्चमी द्विवचन में भी 'राम+भ्याम्' में 'सुपि च' से दीर्घ होकर रामाभ्याम् तथा बहुवचन राम+भ्यस् में 'बहुवचने झल्येत्' से अकारान्त अङ्ग को 'ए' आदेश होकर 'रामेभ्यस्' एवं रुत्वविसर्ग होकर 'रामेभ्यः' रूप सिद्ध होगा।

षष्ठी एकवचन में 'राम+ङस्' होने पर 'टाङसिङसामिनात्स्याः' से स्य आदेश 'अनेकाल् शित्सर्वस्य' से सम्पूर्ण के स्थान पर होगा — राम+स्य=रामस्य सिद्ध होगा।

षष्ठी द्विवचन में 'राम+ओस्' होने पर —

१४७. ओसि च ङ । ३ । १०४

अतोऽङ्गस्यैकारः । रामयोः ।

अकारान्त अङ्ग से परे 'ओस्' प्रत्यय होने पर अङ्ग के अन्तिम वर्ण 'अ' को 'ए' आदेश होता है।

इस सूत्रानुसार —राम' के अन्तिम अ को ए आदेश होगा — रामे+ओस् । 'एचोऽयवायावः' से ए को अय् आदेश — राम् अय् ओस् = रामयोस् । 'सुप्तिङन्तं पदम्' से पदसंज्ञा होने से 'ससजुषो रुः' से स् को रु, 'उपदेशोऽजनुनासिक इत्

से उ की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप — रामयोर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग आदेश होकर — रामयोः सिद्ध हुआ।

षष्ठी बहुवचन में 'राम+आम्' आने पर 'अकः सवर्णे दीर्घः' से सवर्ण दीर्घ एकादेश प्राप्त था, किन्तु अग्रिम सूत्र से नुट् का अग्रगम होगा —

१४८. ह्रस्वनद्यापो नुट् ७। १। ५४

ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात्परस्यामो नुडागमः।

{ ह्रस्वनद्यापः = ह्रस्व+नदी+आपः = ह्रस्वान्त, नद्यन्त, आबन्त। आप् स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय है टाप् डाप्, चाप्। नुट् का आगम 'आम्' को होता है।

'नुट्' में ट् की इत्संज्ञा होती है अतः टित् है और 'आद्यन्तौ टकितौ' से इसे आम् के आदि में रखा जायेगा। 'राम नुट् आम्'। 'ट्' की 'हलन्त्यम्' से और 'उ' को 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत्संज्ञा एवं 'तस्य लोपः' से लोप करने पर राम न् आम् = रामनाम्।

१४९. नामि ६। ४। ३

(नामि परे) अजन्ताङ्गस्य दीर्घः। रामाणाम्, रामे, रामयोः।

एत्वे कृते —

'नाम्' परे रहने पर अजन्त अङ्ग के अन्तिम 'अ' को दीर्घ होता है।

'रामानाम्' हुआ। 'अट्कुप्वाङनुम्व्यवायेऽपि' से र् से परे न् को एक ही पद में होने से ण् आदेश हो गया — रामाणाम्।

सप्तमी एकवचन में 'राम+ङि' होने पर 'लशक्वतद्धिते' से प्रत्यय के आदि में कवर्ग ङ् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप हुआ — 'राम+ङि'। 'आद्गुणः' से गुण एकादेश होकर — रामे।

सप्तमी द्विवचन में 'राम+ओस्' होने पर 'ओसि च' से 'राम' को ए आदेश — रामे ओस् = राम् अय् ओस् = रामयोस्। रुत्व और र को विसर्ग करने पर रामयोः सिद्ध होता है।

सप्तमी बहुवचन में 'राम+सुप्' में 'प्' की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप — 'राम'सु। 'बहुवचने झल्येत्' से 'राम' के 'अ' को ए आदेश होगा। रामे+सु = रामेसु। तब —

१५०. आदेशप्रत्यययोः ट । ३ । ५६

इण्कुभ्यां परस्यापदान्तस्यादेशः प्रत्ययावयवश्च यः सस्तस्य मूर्धन्यादेशः। ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश एव षः। रामेषु।

इण् प्रत्याहार के वर्णों तथा कवर्ग से परे अपदान्त आदेश रूप स् तथा प्रत्यय के अवयव के रूप में आये हुए स् को मूर्धन्य आदेश हो। 'स्' का आभ्यन्तर यत्न ईषद्विवृत है, उसके स्थान पर ईषदिववृत आभ्यन्तर यत्न वाला मूर्धन्य 'ष्' आदेश होगा।

{ 'इण्कोः' सूत्र से इण् और कवर्ग से परे का अर्थ ग्रहण किया जायेगा। 'अपदान्तस्य मूर्धन्यः' सूत्र की भी अनुवृत्ति होगी। सहैः साढः सः' से स् की अनुवृत्ति। आदेशप्रत्यययोः = आदेश और प्रत्यय के 'स्' को मूर्धन्य आदेश हो। }

इस सूत्र से प्रत्यय के अवयव स् को ष आदेश होकर रामेषु। एवं कृष्णादयोऽप्यदन्ताः।

इसी प्रकार 'कृष्ण' आदि अकारान्त (पुल्लिङ्ग) शब्दों के भी रूप होते हैं।

अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द राम के रूप :

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पञ्चमी	रामात्, रामाद्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु
संबोधन में	हे राम	हे रामौ	हे रामाः

सर्वनाम शब्द रूप

‘सर्व’ आदि सर्वनाम शब्दों के रूप कई विभक्ति प्रत्ययों के परे रहते ‘राम’ शब्द के रूपों से भिन्न होते हैं। उनके विषय में विशिष्ट नियमों का निर्देश किया गया है।

सर्वनाम संज्ञा या सर्वनाम कहे जाने वाले शब्द अधोलिखित सूत्र में स्पष्ट किये गये हैं -

१५१. सर्वादीनि सर्वनाम्नानि ५११। २७

सर्वादीनि शब्दस्वरूपाणि सर्वनामसंज्ञानि स्युः। सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम। पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्। स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्। अन्तरं बहियोगोपसंव्यानयोः।

त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम्।

सर्व आदि शब्दों की सर्वनाम संज्ञा होती है। ये सर्व आदि शब्द ३५ हैं।

१. सर्व (सभी), २. विश्व (सभी), ३. उभ (दो), ४. उभय (दोनों), ५-६ डतर और डतम प्रत्यय हैं। इन प्रत्ययों से अन्त होने वाले शब्द सर्वनाम होते हैं। ७. अन्य (दूसरा), ८. अन्यतर (दो में से एक), ९. इतर (अन्य), १०. त्वत् (एक या अनेक), ११. त्व (एक अन्य), १२. नेम (आधा), १३. सम (कोई), १४. सिम (सब), १५. पूर्व (पूर्व दिशा, पहला, पहले का), १६. पर (दूसरा), १७. अवर (निम्न), १८. दक्षिण, १९. उत्तर, २०. अपर (पश्चिम या दूसरा), २१. अधर (नीचा), २२. स्व, २३. अन्तर (बाह्य परिधानीय), २४. त्यद् (वह), २५. तद् (वह), २६. यद् (जो), २७. एतद् (यह), २८. इदम् (यह), २९. अदस् (वह), ३०. एक, ३१. द्वि, ३२. युष्मद् (तुम), ३३. अस्मद् (मैं), ३४. भवतु, ३५. किम्।

अकारान्त सर्वनाम 'सर्व' के रूप

सर्व अकारान्त सर्वनाम शब्द के रूप पाँच स्थलों पर ही अकारान्त 'राम' शब्द से भिन्न होते हैं।

१. प्रथमा बहुवचन।
२. चतुर्थी एकवचन।
३. पञ्चमी एकवचन।
४. षष्ठी बहुवचन।
५. सप्तमी एकवचन।

इन पाँच भिन्न रूपों के विषय में ही यहाँ नियम दिये गये हैं। शेष विभक्तियों में 'राम' के समान ही रूप चलते हैं।

यथा — प्रथमा एकवचन — सर्वः, द्विवचन — सर्वौ।

प्रथमा बहुवचन में — सर्व सर्व सर्व जस् होने पर 'सरूपाणामेकशेष एक विभक्तौ' — से एक 'सर्व' शेष रहकर 'सर्व जस्' हुआ। तब अग्रिम सूत्र से 'जस्' को 'शी' आदेश होगा —

१५२. जसः शी ७। १। १७

अदन्तात् सर्वनाम्नों जसः शी स्यात्।

अनेकाल्त्वात् संवादेशः — सर्वे।

अकारान्त सर्वनाम से परे 'जस्' के स्थान पर 'शी' आदेश होता है।

{ सूत्रार्थ — 'अतो भिस ऐस्' सूत्र से 'अतः' (अकारान्त से) तथा 'सर्वनाम्नः स्मै, से सर्वनाम्न' की अनुवृत्ति करके इस सूत्र का अर्थ हुआ अकारान्त सर्वनाम के बाद, जसः = जस् के स्थान पर 'शी' आदेश हो। }

आदेश स्थानी के समान होने से 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' सूत्रानुसार 'शी' भी प्रत्यय हुआ और 'लशक्वतद्धिते' सूत्रानुसार प्रत्यय के आदि में श् की इत्संज्ञा हुई, 'तस्य लोपः' से लोप — सर्व+ई। 'आदगुणः' से गुण एकादेश होकर 'सर्वे' रूप सिद्ध हुआ।

द्वितीया — सर्वम्, सर्वो, सर्वान्। तृतीया — सर्वेण, सर्वाभ्याम्; सर्वेः। चतुर्थी एकवचन में 'सर्व+ङे, होने पर अग्रिम सूत्र द्वारा ङे के स्थान पर 'स्मै' आदेश होगा —

१५३. सर्वनाम्नः स्मै ७। १। १४

अतः सर्वनाम्नो ङेः स्मै। सर्वस्मै।

अकारान्त सर्वनाम से परे ङे के स्थान पर 'स्मै' आदेश होता है।

{ सूत्रार्थ — यहाँ भी 'अतो भिस ऐस' सूत्र से 'अतः' तथा डेर्यः' सूत्र से ङे की अनुवृत्ति कर, अतः = अकारान्त, सर्वनाम्नः = सर्वनाम से परे ङेः = (ङे + षष्ठी) ङे के स्थान पर, स्मै = स्मै आदेश हो, ऐसा अर्थ हुआ। }

'सर्व+ङे' में 'अनेकाल्शित् सर्वस्य' सूत्रानुसार, 'स्मै' अनेकाल् होने से सम्पूर्ण ङे के स्थान पर हुआ, सर्व + स्मै = सर्वस्मै।

चतुर्थी द्विवचन — सर्वाभ्याम्, बहुवचन — सर्वेभ्यः।

पंचमी एकवचन में 'सर्व+ङसि' होने पर अग्रिम सूत्र 'ङसि' के स्थान पर 'स्मात्' आदेश का विधान करता है।

१५४. ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ७। १। १५

अतः सर्वनाम्नो ङसिङ्योरेतौ स्तः। सर्वस्मात्।

अकारान्त सर्वनाम से परे ङसि और ङि को क्रमशः स्मात् और स्मिन् आदेश होता है।

{ सूत्रार्थ — ङसिङ्योः = ङसि + ङि + षष्ठी द्विवचन, ङसि और ङि के स्थान पर। 'स्मात्स्मिनौ = स्मात् और स्मिन् आदेश होता है। 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' से क्रमशः आदेश होगा। ङसि के स्थान पर स्मात् और ङि के स्थान पर स्मिन् आदेश होता है।

'सर्व+ङसि' में ङसि के स्थान पर 'स्मात्' आदेश हुआ, जो 'अनेकाल्शित्सर्वस्य' नियमानुसार सम्पूर्ण 'ङसि' के स्थान पर होगा। सर्व+स्मात् = सर्वस्मात्।

पंचमी द्विवचन — सर्वाभ्याम्, बहुवचन — सर्वेभ्यः ।

षष्ठी एकवचन — सर्वस्य, द्विवचन — सर्वयोः ।

षष्ठी बहुवन में 'सर्व+आम्' आने पर अग्रिम सूत्र द्वारा 'आम्' को 'सुट्' आगम होगा ।

१५५. आमि सर्वनाम्नः सुट् ७। १। ५२

अवर्णान्तात् परस्य सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागमः ।

अवर्ण से अन्त होने वाले अङ्ग से परे तथा सर्वनाम से विहित 'आम्' को सुट् का आगम हो ।

{ सूत्रार्थ — आमि = (आम्+सप्तमी), आम् के परे रहते । 'आज्जसेरसुक्' सूत्र से आत् की अनुवृत्ति । आत् = अवर्णान्त से परे सर्वनाम्नः — (पञ्चमी एकवचन) = सर्वनाम से विहित । सुट् = सुट् आगम हो । सुट् आगम किसको होगा ? 'आमि' में सप्तमी है 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' से पूर्ववर्ती को 'सर्वनाम्नः' में पंचमी है, अतः 'तस्मादित्युत्तरस्य' से बाद वाले अर्थात् 'आम्' को सुट् आगम हो । 'उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान्' नियम से उत्तरवर्ती 'आम्' को सुट् आगम हो । 'आद्यन्तौ टकितौ' से 'सुट्' 'दित्' होने से 'आम्' के आदि में होगा — सर्व सुट् आम् ।

'हलन्त्यम्' से ट् की, 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से उँ की इत्संज्ञा और लोप होने पर सर्व+साम् । 'बहुवचने झल्येत्' से 'साम्' झलादि होने से 'सर्व' के अन्तिम 'अ' को 'ए' आदेश हुआ — 'सर्वेसाम्' । 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को मूर्धन्य करके — सर्वेषाम् सिद्ध हुआ ।

सप्तमी एकवचन में 'सर्व' शब्द से 'ङि' आने पर 'ङिसिङ्योः स्मात्स्मिनौ' सूत्र से 'ङि' के स्थान पर 'स्मिन्' आदेश हुआ । 'सर्वस्मिन्' सिद्ध हुआ ।

सप्तमी द्विवचन = सर्वयोः, बहुवचन—सर्वेषु । सम्बोधन भी 'राम' के समान होगा — हे सर्व, हे सर्वो, किन्तु बहुवचन में 'जस्' को 'शि' आदेश होकर — हे सर्वे ।

शेषं रामवत् एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः ।

सर्व के शेष रूप 'राम' के समान ही होते हैं। इसी प्रकार 'विश्व' आदि अकारान्त सर्वनाम शब्दों के भी रूप होते हैं।

अकारान्त सर्वनाम 'सर्व' के रूप

प्रथमा	सर्वः	सर्वो	सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
संबोधन	हे सर्व	हे सर्वौ	हे सर्वे

इकारान्त पुल्लिङ्ग 'हरि'

हरिः। हरी ।

प्रथमा एकवचन में 'हरि सु' होने 'उ' को 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः', से लोप होने पर 'हरिस्'। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु आदेश-हरिरु'। उ की इत्संज्ञा और लोप - हरिर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग - हरिः।

प्रथमा द्विवचन में 'हरि हरि औ' 'सरूपाणमेकशेष एकविभक्तौ' से एक हरि शेष बचा-हरि औ। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश-हरी।

प्रथमा बहुवचन में 'हरि हरि हरि जस्' होने पर 'सरूपाणामेकशेष एक विभक्तौ' से एक 'हरि' शेष बचा - हरि जस्। 'चुटू' से ज् की इत्संज्ञा तथा लोप करने पर हरि अस्। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्णदीर्घ प्राप्त था किन्तु अग्रिम सूत्र से दीर्घ नहीं होगा -

१६८. जसि च ७। ३। १०६

ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः। हरयः।

‘ह्रस्व अंग को गुण हो’, अर्थात् जिस अंग के अन्त में ह्रस्व स्वर हो उस ह्रस्व स्वर को गुण आदेश हो।

‘हरि+अस्’ में इ को गुण आदेश होगा। ‘इ’ का गुण स्वर है ए। ‘हरे+अस्’। ‘एचोऽयवायावः’ से ‘ए’ को अय् आदेश — हर् अय् अस् = हरयस्। रुत्व और विसर्ग करने पर ‘हरयः’ रूप सिद्ध हुआ।

सम्बोधन के एकवचन में ‘हे हरि+सु’ — से हरि+स् होने पर

१६९. ह्रस्वस्य गुणः ७। ३। १०८

सम्बुद्धौ। हे हरे। हरिम्।। हरीन्।

सम्बुद्धि होने पर ह्रस्व अंग को गुण आदेश होता है।

‘एकवचनं सम्बुद्धिः’ सूत्र से हे हरि स् की सम्बुद्धि संज्ञा हुई सम्बुद्धि परे रहते हे हरि, के इ को गुण ए — हे हरे स्। ‘एङह्रस्वात्सम्बुद्धेः’ सूत्र से स् का लोप होने पर ‘हे हरे’ रूप सिद्ध हुआ।

द्वितीया एकवचन में हरि+अम् होने पर ‘अमि पूर्वः’ से पूर्वरूप होकर हरिम्। द्विवचन में प्रथमा द्विवचन के समान—हरी। द्वितीया बहुवचन में हरि+शस् होने पर ‘लशक्वतद्धिते’ से श् की इत्संज्ञा तथा लोप—हरि+अस्। ‘प्रथमयोः पूर्वसवर्णः’ से इ और अ के स्थान पर ई — हरीस्। ‘तस्माच्छसो नः पुंसि’ से स् को न् हुआ — हरीन्। ‘अट्कुप्वाङनुम्व्यवायेऽपि’ से न् को ण् प्राप्त होने पर ‘पदान्तस्य’ से निषेध होने पर ‘हरीन्’ हुआ।

तृतीया एकवचन में हरि+टा होने पर ‘चुटू’ से ‘ट्’ की इत्संज्ञा और लोप हरि+आ।

◆ घिसंज्ञा

१७०. शेषो घ्यसखि १। ४। ७

शेष इति स्पष्टार्थम्। अनदीसंज्ञौ ह्रस्वौ याविदुतौ
तदन्तं सखिवर्जम् घिसंज्ञम्।

जिनकी नदी संज्ञा नहीं होती ऐसे ह्रस्व इ और उ से अन्त होने वाले शब्दों की घि संज्ञा होती है, किन्तु 'सखि' शब्द की घि संज्ञा नहीं होती।

{ सूत्रार्थ - शेषः = शेष की, नदी संज्ञा से भिन्न की। 'ङिति ह्रस्वश्च' सूत्र से ह्रस्व = ह्रस्व की तथा 'यूस्त्र्याख्यौ नदी' सूत्र से यू की अनुवृत्ति होती है, यू = इ, उ से अन्त होने वाले की। घि = घिसंज्ञा होती है। असखि = सखि शब्द को छोड़कर। }

यद्यपि सखि शब्द ह्रस्व इकारान्त है, फिर भी इसकी घिसंज्ञा नहीं होती। घिसंज्ञा को समझने के लिए नदी संज्ञा समझना आवश्यक है। 'यू स्त्र्याख्यौ नदी' ईकारान्त और ऊकारान्त नित्यस्त्रीलिङ्ग शब्दों की नदी संज्ञा होती है।

इस प्रकार पुलिङ्ग में ह्रस्व इकारान्त और ह्रस्व उकारान्त की घिसंज्ञा होती है। हरि शब्द की घिसंज्ञा हुई। अब तृतीया एकवचन में हरि + आ होने पर -

१७१. आङो नास्त्रियाम् ७। ३। १२०

घेः परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम्। आङ् इति टासंज्ञा। हरिणा।
हरिभ्याम्, हरिभिः।

जिसकी घिसंज्ञा होती है उससे परे आङ् आने पर आङ् को 'ना' आदेश होता है, किन्तु स्त्रीलिङ्ग शब्द से नहीं। आङ् का अर्थ है 'टा' विभक्ति प्रत्यय।

इस प्रकार घिसंज्ञक पुल्लिङ्ग 'हरि' से परे होने पर 'आ' को 'ना' आदेश हुआ - 'हरिना' 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यायेऽपि' सूत्र से न् को ण् हुआ - हरिणा।

द्विवचन में हरि+भ्याम् = हरिभ्याम्। बहुवचन में हरि+भिस् = हरिभिस्।
 स् को रुत्व विसर्ग करने पर हरिभिः।

चतुर्थी एकवचन में 'डे' परे होने पर अग्रिम सूत्र लागू होगा -

१७२. घेर्ङिति ७। ३। १११

घिसंज्ञकस्य ङिति सुपि गुणः। हरये।

घिसंज्ञक से परे ङित् (जिसमें ङ् की इत्संज्ञा हो) सुप् विभक्ति होने पर घिसंज्ञक को गुण आदेश होता है।

जिसकी घि संज्ञा हुई हो उससे परे ङित् सुप् विभक्ति अर्थात् डे, डसि, डि हो तो घिसंज्ञक को अर्थात् 'घिसंज्ञक' के अन्तिम वर्ण को गुण आदेश होता है।

{ सूत्रार्थ - घेः = घि के स्थान पर, 'घिसंज्ञक' के अन्तिम वर्ण के स्थान पर। ङिति = ङित् + सप्तमी = ङित् विभक्ति परे होने पर। 'सुपि च' सूत्र के 'सुपि' की अनुवृत्ति होगी। सुपि = सुप् परे होने पर। 'ह्रस्वस्य गुणः से गुणः = गुण' आदेश हो। }

'हरि+डे' में ङ् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप होने पर 'हरि+ए'। 'घेर्ङिति' से 'ङ' को गुण 'ए' 'हरे+ए'। ए को 'एचोऽयवायावः' से य् आदेश - हरये।

हरि हरि हरि भ्यस् होने पर एक हरि शेष होकर हरिभ्यस्। हरि अकारान्त नहीं है अतः 'बहुवचने झल्येत्' नहीं लागू होगा - सीधा-सीधा हरिभ्यस् से स् को रु, रु में उ की इत्संज्ञा और लोप 'हरिभ्यस्'। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग - हरिभ्यः।

पञ्चमी एकवचन में 'हरि+ङसि' होने पर, 'लशक्वतद्धिते' से ङ् की इत्संज्ञा और लोपः 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से 'ङ' की इत्संज्ञा और लोप - 'हरि+अस्'। हरि की घिसंज्ञा होने से 'घेर्ङिति' सूत्र से ङित् विभक्ति परे रहते 'हरि' के 'ङ' को गुण होकर - हरे + अस्। 'एचोऽयवायावः' से अय् आदेश प्राप्त हुआ, किन्तु अग्रिम सूत्र के पूर्वरूप एकादेश होगा -

१७३. डसिडसोश्च ६। १। १०

एडो डसिडसोरति पूर्वरूपमेकादेशः। हरेः हर्योः हरीणाम्।

एङ् (ए, ओ) के बाद डसि और डस् का अकार आवे तो पूर्व और पर दोनों के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होता है।

{ सूत्रार्थ - 'एङः पदान्तादति' से एङ् की अनुवृत्ति होगी। एङः = एङ् (ए, ओ) के बाद। डसिडसोः (षष्ठी द्विवचन) - डसि और डस् के। 'एङः पदान्तादति' से ही अति = अत् अर्थात् ह्रस्व अ के परे रहते। 'एकः पूर्वपरयोः' से पूर्व और पर के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश हो। }

यहाँ हरे+अस् को हरेस्। रुत्व और विसर्ग करने पर 'हरेः' सिद्ध हुआ। षष्ठी एकवचन में भी हरि+डस्, हरि+अस्, हरे+अस्=हरेस्=हरेः।

षष्ठी द्विवचन में हरि+ओस् हुआ। 'इको यणचि' से यण् आदेश करने पर हर्योस्। स् को रुत्व और विसर्ग करने पर हर्योः रूप सिद्ध हुआ। सप्तमी द्विवचन में भी हर्योः रूप होगा।

षष्ठी बहुवचन में 'हरि+आम्' होने पर हरि ह्रस्वान्त है, अतः 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट् का आगम कर - हरिनाम्। 'नामि' से इ को दीर्घ करने पर हरीणाम्। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यायेऽपि' से न् को ण् करने पर हरीणाम्।

सप्तमी एकवचन में हरि+ङि। ङ् की इत्संज्ञा और लोप करने पर हरि+इ। 'घेर्ङिति' से इ को गुण आदेश प्राप्त हुआ, किन्तु अग्रिम सूत्र से इ को 'औ' तथा हरि के इ को अ हो जायेगा -

१७४. अच्च घेः ७। ३। ११६

इदुद्भ्यामुत्तरस्य डेरौत्। घेरत्।

ह्रस्व इ और ह्रस्व उ के बाद 'ङि' को 'औत्' आदेश होता है और घिसंज्ञक के अन्तिम स्वर को अत् (= अ) आदेश होता है।

{ सूत्रार्थ - इस सूत्र में 'इदुद्भ्याम्' सूत्र की अनुवृत्ति होगी। 'डेराम्नद्याम्नीभ्यः'

से डे की तथा 'औत्' से औत् की अनुवृत्ति होगी। इदुद्भ्याम् = इत् (ह्रस्व इ), उत् (ह्रस्व उ) से परे। डे = डिः + षष्ठी एकवचन, डि के स्थान पर। औत् = औ आदेश हो और घेः (घि + षष्ठी) घि के स्थान पर, 'अलोऽन्त्यस्य' से अर्थ होगा कि 'घि' के अन्तिम वर्ण के स्थान पर अत् = ह्रस्व अ का आदेश हो।}

हरि + इ में इ को औ तथा घिसंज्ञक हरि के अन्तिम वर्ण इ को अ आदेश होंगे। हर + औ। 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि एकादेश होकर हरौ रूप बना।

सप्तमी बहुवचन में हरि + सुप्। प की इत्संज्ञा और लोप होने पर हरिसु। 'आदेशप्रत्ययोः' से प्रत्यय के स् को ष आदेश होकर 'हरिषु' रूप सिद्ध हुआ। एवं कव्यादयः।

इसी प्रकार कवि आदि इकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं।

इकारान्त पुल्लिङ्ग 'हरि' के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	हरिः	हरी	हरयः
द्वितीया	हरिम्	हरी	हरीन्
तृतीया	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
चतुर्थी	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
पञ्चमी	हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
षष्ठी	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
सप्तमी	हरौ	हर्योः	हरिषु
संबोधन में	हे हरे	हे हरी	हे हरयः

इकारान्त पुल्लिङ्ग 'सखि'

इकारान्त पुल्लिङ्ग सखि शब्द के रूप इकारान्त पुल्लिङ्ग 'हरि' शब्द के रूपों से कई विभक्तियों में भिन्न होते हैं। प्रथमतः कारण यही है कि 'शेषोध्यसखि' सूत्र में ही 'असंखि' कहकर सखि शब्द को घि संज्ञा के क्षेत्र से बाहर कर दिया गया है।

सखि शब्द को प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आने पर - सखि सु। उ की 'उपदेशोऽजनुनासिक' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप करने पर - सखि स्।

अब सखि के स्थान पर अनङ् आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र है।

१७५. अनङ् सौ ७। १। ६३

सख्युरङ्गस्यानङादेशोऽसम्बुद्धौ सौ।

सखि के बाद यदि सम्बुद्धि से भिन्न अर्थात् प्रथमा एकवचन का सु आवे तो सखि को अनङ् आदेश हो।

इस सूत्र से सखि स् में सखि को अनङ् आदेश हुआ। 'अनङ्' आदेश अनेकाल् (अनेक वर्णों वाला) है अतः सम्पूर्ण 'सखि' के स्थान पर होना चाहिए, किन्तु चूँकि अनङ् डित् (ङ् की इत्संज्ञा वाला) आदेश है अतः 'ङिच्च' सूत्र से अंग के अन्तिम वर्ण को होगा। इस प्रकार सखि के इ को अनङ् होकर - सख अनङ् स्।

◆ उपधा संज्ञा का सूत्र

१७६. अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा १। १। ६४

अन्त्यादलः पूर्वो वर्णः उपधासंज्ञः।

(किसी वर्ण समूह में) अन्तिम अल् (वर्ण) से पूर्व वाले वर्ण की उपधा संज्ञा होती है।

(अन्त्यात् अलः पूर्वः = अन्तिम अल् से पहले वाला)

अल् प्रत्याहार शिवसूत्र के प्रथम सूत्र अइउण् के अ और अन्तिम सूत्र हल् के ल् को लेकर बनाया गया है, अतः अल् में सभी स्वर और व्यञ्जन अर्थात् सभी वर्ण आ जाते हैं। वर्ण कहने के स्थान पर अल् ही कहा जाता है। अल् = वर्ण।

यहाँ सख् अनङ् स् होने पर अनङ् में ङ् की और अ की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप हुआ — सख् अन् स = सखन् स । अब सखन् में अन्तिम अल् न् है उसके पूर्ववर्ती अ की उपधा संज्ञा हुई ।

अब इस उपधासंज्ञक अ को दीर्घ करने के लिए सूत्र है —

१७७. सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८

ना नस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने ।

यदि नकारान्त अङ्ग से परे सम्बुद्धि से भिन्न सर्वनामस्थान का प्रत्यय हो तो नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है ।

{ पुञ्जपुंसकस्य (सूत्र १६३) से नपुंसक से भिन्न लिङ्ग में सुट् (सु औ जस् अम् औट्) को सर्वनामस्थान संज्ञा होती है । }

यहाँ सखन् स् में सखन् की उपधा अ को दीर्घ होकर — सखान् स् हुआ । अब सु के स् को अपृक्तसंज्ञा होगी ।

◆ अपृक्त संज्ञा —

१७८. अपृक्त एकाल् प्रत्ययः १।२।४१

एकाल् प्रत्ययो यः, सोऽपृक्तसंज्ञः स्यात् ।

एक अल् (वर्ण) रूप प्रत्यय की अपृक्त संज्ञा हो ।

यहाँ 'सखान् स्' में स् एक अल् रूप प्रत्यय है, इसकी अपृक्त संज्ञा हुई । अब अपृक्त हल् के लोप के लिए सूत्र है —

१७९. हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्वपृक्तं हल् ६।१।६६

हलन्तात् परं दीर्घो यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परम्
सु-ति-सि इत्येतद् अपृक्तं हल् लुप्यते ।

हलन्त से परे, और जिसके अन्त में दीर्घ डी और आप् प्रत्यय हों उससे परे यदि सु, ति, सि प्रत्ययों का अपृक्त हल् आवे तो उस अपृक्त हल् का लोप हो ।

(हलङ्याभ्यः = हल् + डी + आप् से पञ्चमी बहुवचन)

(१) हलन्त के बाद (२) दीर्घ डी प्रत्ययान्त के बाद (३) दीर्घ आप् प्रत्ययान्त के बाद सु के स्, ति के त्, सि के स् का लोप होता है।

यहाँ 'सखान् स्' में सखान् हलन्त है उससे परे सु का स् अपृक्त हल् है, उसका लोप होकर - सखान्।

अब प्रातिपदिकान्त न् को लोप करने के लिए सूत्र है -

१८०. नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८। २। ७

प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नस्य लोपः स्यात्। सखा।

प्रातिपदिकसंज्ञा वाले पद के अन्त में न् का लोप होता है।

यहाँ सखि प्रातिपदिकसंज्ञक से सखान् जो सुबन्त हो गया है पद भी है। इस प्रातिपदिकसंज्ञक पद 'सखान्' के अन्त में आये हुए न् का लोप होकर रूप सिद्ध होगा - सखा।

सखि शब्द के प्रथमा द्विवचन में सखि सखि औ हुआ।

'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' से एक सखि शेष बचा - सखिऔ।

१८१. सख्युरसम्बुद्धौ ७। १। ६२

सख्युरङ्गात् परं सम्बुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत् स्यात्।

अंगसंज्ञक सखि शब्द से परे यदि सम्बुद्धि से भिन्न सर्वनामस्थान विभक्तियाँ हों तो णित् के समान होता है। अर्थात् वे ही कार्य होते हैं जो णित् (ण् की इत्संज्ञा वाला) प्रत्यय परे रहने पर होते हैं।

१८२. अचो ञ्णिति ७। २। ११५

अजन्ताङ्गस्य वृद्धि ञिति णिति च परे। सखायौ, सखायः।

हे सखे, सखायम्, सखायौ, सखीन्। सख्या। सख्ये।

यदि अजन्त अङ्ग से परे जित् या गित् हो तो अजन्त अङ्ग को वृद्धि हो। अर्थात् उसके अन्त में आये हुए अच् को वृद्धि आदेश हो।

सखि औ में औ सर्वनामस्थान विभक्तिप्रत्यय है ('सुडनपुसकस्य' से सम्बुद्धि से भिन्न सु, औ, जस् अम् औट् की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है)। औ को गित् के समान मानकर 'अचो ङिति' से सखि के इ को वृद्धि आदेश होगा — ऐ। तब सखै + औ 'एचोऽयवायावः' से आय् आदेश होकर सिद्ध हुआ — सखायौ।

प्रथमा बहुवचन में सखि सखि सखि जस्। 'सरूपाणामेक' से एक सखि शेष — सखि जस्। 'चुटू' से ज् की इत्संज्ञा और लोप — सखि अस्। 'सख्युरसम्बुद्धौ' से अस् को णिद्वत् मानते हुए 'अचो ङिति' से सखि के इ को वृद्धिसंज्ञक स्वर ऐ आदेश हुआ। सखै अस्। 'एचोऽयवायावः' से ऐ को आय् आदेश होकर — सख् आय् अस् = सखायस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। 'उपदेशे' से उ की इत्संज्ञा एवं 'तस्य लोपः' से लोप — सखायर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग करने पर — सखायः।

संबोधन के प्रथमा में 'हे सखि सु'। सु के उ की 'उपदेशेः' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप — हे सखि स्। 'एकवचनं सम्बुद्धिः' से सु की सम्बुद्धिसंज्ञा होती है, 'ह्रस्वस्य गुणः' सूत्र से सम्बुद्धि परे रहने पर ह्रस्व अङ्ग को गुण आदेश होता है। यहाँ सखि के इ को गुण 'ए' ओदश हुआ — हे सखे स्। 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' से एङन्त (जिसके अन्त में ए, ओ हो) और ह्रस्वस्वरान्त अङ्ग के बाद सम्बुद्धि के हल् का लोप होता है। यहाँ एङन्त सखे के बाद सम्बुद्धि के हल् स् का लोप होकर रूप बनेगा — हे सखे !

द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा के ही समान णिद्वत्भाव करने और सखि के इ को वृद्धि आदेश करने पर — हे सखायौ, हे सखायः।

द्वितीया एकवचन में सखि + अम्। 'सख्युरसम्बुद्धौ' से णिद्वत् भाव होगा, 'अचो ङिति' से इ को वृद्धि स्वर आदेश होकर — सखै + अम्। 'एचोऽयवायावः' से ऐ को आय्—सख् आय् अम् = सखायम्। द्वितीया द्विवचन में भी प्रथमा

द्विवचन के समान - सखि सखि औट्। ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप, 'सरूपाणामेक' से एक सखि शब्द शेष रहकर सखि औ। सर्वनामस्थान होने से णिद्वत् भाव, इ को वृद्धि 'औ' - सखायौ।

द्वितीया बहुवचन में सखि सखि सखि + शस्। 'सरूपाणामेकशेष' से एक सखि शेष, 'लशक्वतद्धिते' से शस् के श् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप करने पर - सखि + अस्। (अब यहाँ सर्वनामस्थान तो है नहीं, अतः णिद्वत् का प्रश्न ही नहीं उठता) 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से सखि + अस् की सन्धि होगी। इ + अ को पूर्वसवर्ण दीर्घ ई - सखीस्। 'तस्माच्छसो नः पुंसि' से पूर्वसवर्णदीर्घ के बाद जो शस् का स् है उसे न् होगा - सखीन्।

तृतीया एकवचन में सखि + टा होने पर 'चुटू' से ट् की इत्संज्ञा और लोप - सखि आ। चूँकि सखि की घिसंज्ञा नहीं होती अतः तृतीया के 'टा' के स्थान पर 'ना' नहीं होगा। सीधे-सीधे 'इको यणचि' से इ को य् आदेश होगा - सख्य् आ = सख्या।

तृतीया द्विवचन में सखि सखि भ्याम्। 'सरूपाणा' ० से एक सखि शेष बचकर - सखिभ्याम्। तृतीया बहुवचन में भी इसी प्रकार - सखि सखि सखि भिस्। एक सखि शेष बचकर सखिभिस्। 'ससजुषोः रुः से स् को रु। उ की इत्संज्ञा और लोप - सखिभिर्। 'खरवासनयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग - सखिभिः।

चतुर्थी एकवचन में सखि + डे। 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप - सखि ए। यहाँ भी सखि के घिसंज्ञक न होने से 'घेर्ङिति' लागू नहीं होगा और इ को गुण स्वर नहीं होगा। सीधे-सीधे 'इको यणचि' से इ को य् आदेश होगा - सख् अय् ए = सख्ये।

चतुर्थी द्विवचन में तृतीया के समान ही - सखिभ्याम्। चतुर्थी बहुवचन में सखि सखि भ्यस्। सखिभ्यस्। स् को रु फिर र् - सखिभ्यर्। 'खरवासनयो' ० से र् को विसर्ग करने पर - सखिभ्यः।

पञ्चमी एकवचन में सखि + डसि। 'इ' की 'उपदेशे' ० से और 'ङ्' की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा एवं लोप करने पर - सखि + अस्। 'इको यणचि' से इ को य् आदेश होकर - सख्य् अस्।

अब अस् के अ को उ आदेश करने के लिए सूत्र आया -

१८३. ख्यत्यात्परस्य ६। १। १०६

खि-ति-शब्दाभ्यां, खी-ती शब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां
परस्य ङसिङ्सोरत उः। सख्युः, सख्युः।

यदि खि, ति और खी, ती शब्दों को यण् आदेश किया गया हो तो उनके बाद ङसि और ङ्स विभक्तिप्रत्ययों का अस् आने पर अस् के अ को उ होवे।

{ खि, खी को यण् आदेश करने पर ख्य होता है तथा ति एवं ती को यण् आदेश करने पर त्य होता है। इसी कारण सूत्र में कहा गया है ख्यत्यात्
= ख्य् + त्य् से पञ्चमी। }

यहाँ भी सखि के खि को यण् करने पर ख्य होकर सख्य् अस् हुआ है। अतः अस् के अ को उ होकर सख्युस् हुआ 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। 'उपदेशे' से उ की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप - सख्युर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग करने पर रूप सिद्ध हुआ - सख्युः।

पञ्चमी द्विवचन में - सखि सखि भ्याम् = सखिभ्याम्। पञ्चमी बहुवचन में चतुर्थी बहुवचन के ही समान - सखि सखि सखि भ्यस् - सखिभ्यस् - सखिभ्यरु - सखिभ्यर् - सखिभ्यः।

षष्ठी एकवचन में सखि + ङस्। 'ङ्' की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप - सखि + अस्। 'इको यणचि' से इ को य् आदेश होकर - सख्य् अस्। 'ख्यत्यात्परस्य' से सख्य् से परे ङस् को अस् होने पर अस् के अ को उ आदेश होकर सख्युस्। 'ससजुषोः रुः', 'उपदेशे' 'तस्यलोपः' के बाद सख्युर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर - सख्युः।

षष्ठी बहुवचन में सखि सखि सखि आम्। 'सरूपाणमेक' से एक सखि शेष बचा - सखि आम्। 'हरवनद्यापो नुट' से आम् को नुट् का आगम। टिट् होने से आदि में होगा। सखि नुट् आम्। ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, एव लोप, उ की उपदेशे से इत्संज्ञा और लोप - सखिन् आम् = सखिनाम्। 'नामि' से

नाम परे रहते अजन्त अंग को दीर्घ होता है अतः इ को दीर्घ होकर सिद्ध हुआ — सखीनाम् ।

सप्तमी एकवचन में सखि + डि । 'लशक्वतद्धिते' से ड की इत्संज्ञा और लोप — सखि + इ ।

अब डि के इ को आ आदेश करने के लिए सूत्र है —

१८४. औत् ७ । ३ । ११८

इदुद्भ्यां परस्य संशान् । सख्यौ । शेषं हरिवत् ।

इत् अर्थात् इत्थं इ तथा उत् अर्थात् इत्थं उ से परे डि को औत् आदेश हो । 'डि' में ड की इत्संज्ञा और लोप करने पर इ बचता है 'उ' आ होवे ।

सखि + इ के स्थान पर — सखि + औ । 'इको यणचि' से इ को उ करने पर — सखि अय् औ = सख्यौ ।

सप्तमी द्विवचन में षष्ठी द्विवचन के ही समान सखि + ओस् । 'इको यणचि' — सख्योस् — रुत्व एवं विसर्ग करने पर — सख्योः ।

सप्तमी बहुवचन में सखि सखि सखि सुप् । 'सरूपाणां' ० से एक सखि शेष — सखि सुप् । 'हलन्त्यम्' से प की इत्संज्ञा, प का लोप — सखिसु । 'आदेशप्रत्यययोः' से स् को मूर्धन्य होकर — सखिषु ।

इकारान्त पुल्लिङ्ग 'सखि' शब्द के रूप इस प्रकार हुए :

प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
द्वितीया	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृतीया	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पञ्चमी	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	सख्योः	सखिषु
संबोधन	हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः

उकारान्त पुल्लिङ्ग 'भानु'

उकारान्त 'शम्भु' आदि पुल्लिङ्ग शब्दों के रूप हरि के समान ही होते हैं।

प्रथमा विभक्ति के एकवचन में 'भानु सु' होने पर 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से उ की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' सूत्र से लोप होगा - भानु स्। 'ससजुषोः रुः' सूत्र से स् को रु - भानु रु। रु के उ की उपदेशेऽं से इत्संज्ञा और लोप करने पर भानु र्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग करने पर - भानुः।

प्रथमा विभक्ति के द्विवचन में भानु से औ प्रत्यय आने पर 'भानु भानु औ'। 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' से एक 'भानु' शेष बचा - भानु औ। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से उ और औ के स्थान पर उ का दीर्घ एकादेश हुआ - भानू।

प्रथमा विभक्ति बहुवचन में जस् विभक्ति आने पर - 'भानु भानु भानु जस्'। 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' से एक भानु शेष बचा - भानु जस्। 'चुट्' से जस् के ज् की इत्संज्ञा, लोप करने पर - भानु अस्।

इस स्थिति में 'जसि च' से ह्रस्व अङ्ग को गुण होता है जस् के परे रहते। उ को गुण आदेश हुआ - भानो अस्। 'एचोऽयवायावः' से ओ को अव होकर - भानवस्। स् को रु और र तथा विसर्ग करने पर भानवः।

संबोधन में हे भानु + सु। उ की इत्संज्ञा और लोप होकर - हे भानु स्। 'ह्रस्वस्य गुणः' सूत्र से संबुद्धि का सु परे रहते, ह्रस्व अङ्ग उ को गुण होगा ओ - हे भानो स्। 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' सूत्र से स् का लोप होकर हे भानो।

संबोधन के द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा विभक्ति के द्विवचन एवं बहुवचन के ही समान - हे भानौ, हे भानवः।

द्वितीया एकवचन में अम् प्रत्यय आने पर - भानु अम्। 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप होकर - भानुम्।

द्वितीया द्विवचन में प्रथमा द्विवचन के समान ही सिद्धि होगी।

द्वितीया बहुवचन में भानु भानु भानु शस्। 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' से एक भानु शेष बचा - भानु शस्। 'लशक्वतद्धिते' से शस् के श् की इत्संज्ञा,

‘तस्य लोपः’ से लोप होने पर — भानु अस्। ‘प्रथमयोः पूर्वसवर्णः’ से उ और अ की सन्धि होकर ऊ — भानूस्। ‘तस्माच्छसो नः पुंसि’ से पूर्वसवर्णदीर्घ के बाद शस् के स् को न् होगा — भानून्। ‘अटकुप्वाङनुम्वयायेऽपि’ से न् को ण् प्राप्त हुआ, ‘पदान्तस्य’ से निषेध होकर सिद्ध हुआ — भानून्।

तृतीया एकवचन में भानु + टा। ‘चुटू’ से ट की इत्सां और ‘तस्य लोपः’ से लोप होकर भानु आ। ‘शेषो घ्यसखि’ से ह्रस्व उकारान्त भानु की घिसंज्ञा होगी। ‘आडो नास्त्रियाम्’ सूत्र से ‘भानु आ’ में आ को ना आदेश हुआ — भानुना।

तृतीया द्विवचन में भानु भानु भ्याम् होने पर ‘सरूपाणामेकशेष एक विभक्तौ’ से एक भानु शेष बचेगा — भानुभ्याम्। चूँकि भानु अकारान्त नहीं है अतः ‘सुपि च’ लागू नहीं होगा, सीधा—सीधा भानुभ्याम् सिद्ध होगा।

तृतीया बहुवचन में भानु भानु भानु भिस्। ‘सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ’ से एक भानु शेष बचा — भानु भिस्। भानु अकारान्त नहीं है अतः भिस् को ऐस् नहीं होगा। सीधा—सीधा—भानुभिस्। स् को ‘ससजुषो रुः’ से रुः, उ की इत्संज्ञा और लोप — भानुभिर्। ‘खरवसानयोर्विसर्जनीयः’ से, र् को विसर्ग — भानुभिः।

चतुर्थी एकवचन में भानु + डे। ‘लशक्वतद्धिते’ से डे में ङ् की इत्संज्ञा और ‘तस्य लोपः’ से लोप — भानु ए। ‘शेषो घ्यसखि’ से भानु घिसंज्ञक है, अतः ‘घेर्ङिति’ सूत्र से ङित् (ङ् की इत्संज्ञा वाला) सुप् विभक्ति प्रत्यय परे होने पर घिसंज्ञक को गुण आदेश होगा भानु के उ को गुण आदेश ओ — भानो ए। ‘एचोऽयवायावः’ से ओ को अच् होकर—भानवे।

चतुर्थी द्विवचन में तृतीया द्विवचन के ही समान भानु भानु भ्याम्। भानु भ्याम् — भानुभ्याम्।

चतुर्थी बहुवचन में भानु भानु भानु भ्यस्। एक भानु शेष बचा — भानुभ्यस्। भानु अकारान्त नहीं है अतः ‘बहुवचने झल्येत्’ नहीं लागू होगा। भानुभ्यस् से स् को ससजुषो रुः’ से रु/रु में उ की ‘उपदेशो’ से इत्संज्ञा, ‘तस्य लोपः’ से लोप — भानुभ्यर्। ‘खरवसानयोर्विसर्जनीयः’ से र् को विसर्ग होकर भानुभ्यः।

पञ्चमी एकवचन में भानु + डसि। 'लशक्वतद्धिते' से ड की इत्संज्ञा और लोप - भानु असि। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इ की इत्संज्ञा और लोप - भानु अस्। भानु की घिसंज्ञा होने के कारण 'घेर्ङिति' से ङित् सुप्विभक्ति प्रत्यय पर होने पर भानु के उ को गुण 'ओ' आदेश हुआ - भानो अस्। 'ङसिङसोश्च' सूत्र से एङ् के बाद डसि का अ आने पर पूर्वरूप एकादेश होगा - भानोस्। स् को 'ससजुषोः रुः' से रु, उ की इत्संज्ञा, लोप - भानोर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग होकर - भानोः।

पञ्चमी द्विवचन और बहुवचन में चतुर्थी विभक्ति के समान ही - भानुभ्याम्, भानुभ्यः।

षष्ठी एकवचन में भानु + डस्। 'लशक्वतद्धिते' से ड की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप-भानु अस्। भानु की घिसंज्ञा होने से 'घेर्ङिति' से ङित्, सुप्प्रत्यय पर होने पर भानु के उ को गुण ओ हुआ - भानो अस्। 'ङसिङसोश्च' सूत्र से एङ् (यहाँ ओ) के बाद डस् का अ आने पर पूर्वरूप एकादेश होगा - भानोस्। 'ससजुषोः रुः' से स को रु, रु को र् - भानोर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग होकर - भानोः।

षष्ठी द्विवचन में भानु भानु ओस्। 'सरूपाणां' से एक भानु शेष बचा - भानु ओस्। 'इको यणचि' से उ को व् आदेश होकर - भान्वोस्। स् को 'ससजुषोः रुः' से रु, भान्वोरु। रु की उपदेशेऽं से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप - भान्वोर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग - भान्वोः।

षष्ठी बहुवचन में भानु भानु भानु आम्। 'सरूपाणां' से एक भानु शेष बचेगा - भानु आम्। 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट् का आगम - भानु नुट् आम्। उ और ट् की इत्संज्ञा एवं लोप - भानुनाम्। 'नामि' से उ को दीर्घ होकर - भानूनाम्।

सप्तमी एकवचन में भानु + ङि। 'लशक्वतद्धिते' से ड की इत्संज्ञा और लोप करने पर - भानु-ङ्। 'घेर्ङिति' से उ को गुण आदेश प्राप्त हुआ तब 'अच्च घेः' सूत्र से ह्रस्व उ के बाद ङि अर्थात् इ को ओ होगा और घिसंज्ञक के अन्तिम

स्वर भानु के उ के स्थान पर अ होगा — भान औ = भानौ ।

सप्तमी द्विवचन का रूप षष्ठी द्विवचन के समान ही होगा भान्वोः ।

सप्तमी बहुवचन में भानु भानु भानु सुप् । 'सरूपाणा०' से एक भानु शेष बचा — भानु सुप् । 'हलन्त्यम्' से प की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप होकर — भानुसु । 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को मूर्धन्य करने पर — भानुषु ।

इस प्रकार 'भानु' उकारान्त शब्द के रूप हुए :

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भानुः	भानू	भानवः
द्वितीया	भानुम्	भानू	भानून्
तृतीया	भानुना	भानुभ्याम्	भानुभिः
चतुर्थी	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
पञ्चमी	भानोः	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
षष्ठी	भानोः	भान्वोः	भानूनाम्
सप्तमी	भानौ	भान्वोः	भानुषु
संबोधन में	हे भानो	हे भानू	हे भानवः

ऋकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द 'पितृ'

ऋकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द पितृ के रूप प्रायः ऋकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द धातृ के समान होते हैं । पितृ शब्द के रूपों में सर्वनामस्थान (प्रथमा के सु औ जस् और द्वितीया के अम् औट्) में उपधा को दीर्घ नहीं होता । पितृ शब्द की सिद्धि में जिन विशेष सूत्रों की आवश्यकता होती है वे 'क्रोष्टु' शब्द की रूपसिद्धि के प्रसंग में दिये गये हैं ।

पितृ से प्रथमा एकवचन में सु होने पर—पितृ सु । सु के उ की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत्संज्ञा 'तस्य लोपः' से लोप—पितृ स् ।

२०४. ऋतो डि—सर्वनामस्थानयोः ॥७॥ ३॥ १०

(ऋतोऽङ्गस्य गुणो ङौ सर्वनामस्थाने च)

यदि डि और सर्वनामस्थान (सु, औ, जस्, अम्, औट्) परें हो तो ह्रस्व ऋकारान्त अंग को गुण होता है।

यहाँ पितृ ऋदन्त से परे सर्वनामस्थान का सु (स) परे है अतः पितृ के ऋ को गुण होना चाहिये, किन्तु तब इसका निषेध करने वाला सूत्र है—

२०५. ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च ७॥ १॥ ६४

(ऋदन्तानाम् उशनसादीनां चानङ् स्यादसम्बद्धौ सौ।

यदि सम्बुद्धि से भिन्न प्रथमा एकवचन का सु परे हो तो ऋदन्त(= ह्रस्व ऋकारान्त) एवं उशनस्, पुरुदंसस् एवम् अनेहस् शब्दों को अनङ् आदेश हो।

पितृ स् में ह्रस्व ऋकारान्त से परे प्रथमा एकवचन का सु होने पर अनङ् आदेश हुआ, 'अनेकाल्शित् सर्वस्य' से सम्पूर्ण पितृ के स्थान पर, किन्तु डि (= ङ् की इत्संज्ञा वाला) होने से 'डिच्च' सूत्र से अन्तिम ऋ के स्थान पर अनङ् हुआ—

पितृ अनङ् स्।

अनङ् के अन्त में आये अङ् के लोप होने पर पितृ अन् स्=पितन् स्।

(यहाँ ध्यान देने योग्य है कि सम्बुद्धिभिन्न सु परे होने पर ही अनङ् आदेश होता है।)

अब उपधा को दीर्घ करने के लिये सूत्र है—'सर्वनामस्थाने चासम्बद्धौ'—(सम्बुद्धि से भिन्न सर्वनामस्थान परे होने पर नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ हो)

अतः 'पितन् स्' में पितन् की उपधा (अन्तिम वर्ण से पूर्व का वर्ण) त के अ को दीर्घ हुआ—पितान् स्।

‘हलङ्याभ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्’ से अपृक्तसंज्ञक स् की जो सु का स् है हलन्त से परे होने के कारण लोप होगा—पितान् । ‘न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य’ (प्रातिपदिकसंज्ञक पद के अन्त में न् का लोप होता है) से चूँकि ‘पितान्’ प्रातिपदिक है, उसमें सुप् विभक्ति लगने का कार्य हो चुका है, अतः अन्तिम न् का लोप होकर रूप सिद्ध होगा—पिता ।

प्रथमा द्विवचन में पितृ पितृ औ । ‘सरूपाणामेकशेष’ ० से एक पितृ शेष बचा—पितृ औ ।

‘ऋतो ङि—सर्वनामस्थानयोः’ से सर्वनामस्थान परे रहने के कारण पितृ के ऋ को गुण—‘अर्’ आदेश होगा—पित् अर् औ=पितरौ ।

प्रथमा बहुवचन में पितृ पितृ पितृ जस् । ‘सरूपाणा’ ० से एक पितृ शेष बचा—पितृ जस् । ज् की ‘चुटू’ से इत्संज्ञा, ‘तस्य लोपः’ से लोप—पितृ अस् । ‘ऋतो ङि—सर्वनामस्थानयोः’ से ऋ को गुण—पित् अर् अस्=पितरस् । ‘ससजुषोः रु’ से स् को रु, उ की इत्संज्ञा और लोप—पितरस् । ‘खरवसानयोर्विसर्जनीया’ से विसर्ग—पितरः ।

संबोधन में एकवचन में—हे पितृ सु । सु में उ को ‘उपदेशे’ से इत्संज्ञा और लोप—हे पितृ स् । ‘ऋतो ङि—सर्वनामस्थानयोः’ से सर्वनामस्थान परे रहने पर पितृ के ऋ को गुण अर्—हे पित् अर् स्—हे पितर स् । पितृ ह्रस्वान्त अंग है उससे परे ‘एङह्रस्वात्सम्बुद्धेः’ से सम्बुद्धि के हल् स् का लोप होकर हे पितर् । र् को ‘खरवसानयोर्विसर्जनीयः’ से विसर्ग होकर—हे पितः ।

संबोधन द्विवचन और बहुवचन प्रथमा विभक्ति के ही समान—हे पितरौ, हे पितरः ।

द्वितीया एकवचन में पितृ+अम् । ‘ऋतो ङि—सर्वनामस्थानयोः’ से ऋ को गुण अर्—पितर् अम्=पितरम् ।

द्वितीया द्विवचन में प्रथमा द्विवचन के समान ही—पितृ पितृ औट् । पितृ औट् । ट् की ‘हलन्त्यम्’ से इत्संज्ञा और लोप—पितृ औ ।

‘ऋतो ङि—सर्वनामस्थानयोः’ से ऋ को गुण अर्—पित् अर् औ=पितरौ ।

द्वितीया बहुवचनमें पितृ पितृ पितृ शस् । 'सरूपाणानेक०' से एक पितृ शेष-पितृ शस् । 'लशक्वतद्धिते' से श् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप-पितृ अस् । 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से ऋ+अ के स्थान पर पूर्वसवर्णदीर्घ होकर-पितृस् । 'तरनाच्छसो न पुंसि' से पूर्वसवर्ण दीर्घ से परे शस् के स् को पुल्लिङ्ग में न हों-पितृन् ।

तृतीया एकवचन में-पितृ+टा । 'चुटू' से ट् की इत्संज्ञा और लोप होकर-पितृ+आ । 'इको यणचि' से ऋ को र्-पितर् आ=पित्रा ।

तृतीया द्विवचन में पितृ भ्याम्=पितृभ्याम् । तृतीया बहुवचन में-पितृ पितृ पितृ भिस् । पितृ भिस्-पितृभिरु-पितृभिर्- 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग-पितृभिः ।

चतुर्थी एकवचन में-पितृ+डे । 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप करने पर-पितृ ए । 'इको यणचि' से ऋ को र् आदेश करने पर-पित्रे ।

चतुर्थी द्विवचन में तृतीया द्विवचन के समान ही-पितृभ्याम् । चतुर्थी बहुवचन में-पितृ पितृ पितृ भ्यस् । 'सरूपाणा०' से एक पितृ शेष-पितृभ्यस् । 'ससजुषोः रु' से स् को रु, उ की इत्संज्ञा और लोप, पितृभ्यर् । 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग की इत्संज्ञा तथा लोप होने पर-पितृ अस् । अब ऋ+अ के स्थान पर उ एकादेश के लिये सूत्र है-

२०८. ऋत उत् । ६ । १ । १०८

ऋतो ङसि-ङसोरति उद् एकादेशः । रपरः ।

ऋत् (ह्रस्व ऋ) से परे ङसि और ङस् का अत् (ह्रस्व अ) हो तो पूर्व और पर के स्थान पर उत् (ह्रस्व उ) आदेश होता है । चूँकि यह उ होता है ऋ के स्थान पर अतः 'उरण् रपरः' से रपर होकर उर् एकादेश होता है-

पितृ+अस् में ऋ+अ को उर् होकर पित् उर् स् हुआ=पितुर् स् । अब स् के लोप के लिये सूत्र है-

२०६. रात् सस्य । ८ । २ । २४

रेफात् संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य ।

जब रेफ (र) से परे संयोगान्त का लोप करना होता है तब स् का ही लोप होता है, अन्य का नहीं ।

पितुर् स् में र से परे आये स् का 'संयोगान्तस्य लोपः' से लोप हो जायगा—पितुर् । र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—पितुः ।

पंचमी द्विवचन और बहुवचन में चतुर्थी के समान ही पितृभ्याम्, पितृभ्यः ।

षष्ठी एकवचन में पितृ+ङस् । ङ की इत्संज्ञा और लोप—पितृ+अस् ।

'ऋत उत' से ऋ और अ के स्थान पर उर्—पितुर् स । 'रात् सस्य' से स् का लोप पितुर् । 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग—पितुः ।

षष्ठी द्विवचन में पितृ पितृ ओस् । एक पितृ शेष बचकर पितृ ओस् । 'इको यणचि' से यण करने पर पितृ र ओस्=पित्रोस् 'ससजुषोः रुः' से रु, रु को र और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—पित्रोः ।

षष्ठी बहुवचन में पितृ पितृ पितृ आम् । एक पितृ शब्द शेष बचा—पितृ आम् । 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से=आम् को नुट् का आगम—पितृ नुट् आम् । नुट् में ट् और उ का लोप होने पर पितृ न् आम्=पितृनाम् । 'नामि' से ऋ को दीर्घ करने पर पितृनाम्—'ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' वार्तिक से न् को ण् होकर—पितृणाम् ।

सप्तमी एकवचन में पितृ+ङि । ङ की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप—पितृ+इ ।

'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः' सूत्र से ऋ को गुण—अर् करने पर पितृ.अर् इ=पितरि ।

सप्तमी द्विवचन में षष्ठी के समान ही—पित्रोः । सप्तमी बहुवचन में पितृ पितृ पितृ सुप् । 'सरूपाणाम्' से एक पितृ शेष बचा—पितृ सुप् । प् की इत्संज्ञा और लोप—पितृ सु । 'आदेशप्रत्ययोः' से सु को षु होकर पितृषु ।

पितृ शब्द के रूप इस प्रकार हुए—

प्रथमा—	पिता	पितरौ	पितरः
द्वितीया	पितरम्	..	पितॄन्
तृतीया	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
चतुर्थी	पित्रे	..	पितृभ्यः
पंचमी	पितुः	..	..
षष्ठी	..	पित्रोः	पितॄणाम्
सप्तमी	पितरि	..	पितॄषु
संबोधन	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

ओकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द गो

प्रथमा के एकवचन में गो+सु होने पर उ की इत्संज्ञा और लोप होकर—गो स् ।

२१३. गोतो णित् ७। १। ६०

ओकाराद् विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वत् । गौः, गावौ, गावः ।

ओकारान्त शब्द से जब सर्वनामस्थान होगा तब णित् (ण की इत्संज्ञा) के समान ही कार्य होते हैं ।

‘गो’ ओकारान्त के बाद सु (जो सर्वनामस्थान है) आने पर णित् के समान ही ‘अघो ङिति’ से जिसके अन्त में अच् हो उस अङ्ग के बाद जित् और णित् परे होने पर अजन्त अंग को वृद्धि आदेश होता है ।

गो के ओ को वृद्धि ‘औ’ आदेश हुआ—गौस् । ‘ससजुषोः रुः’ से रु और ‘उपदेशे०’ से उ की इत्संज्ञा और लोप—गौर् । ‘खरवसानयोर्विसर्जनीयः’ से विसर्ग करने पर—गौः ।

प्रथमा के द्विवचन में— गो गो औ । ‘सरूपाणा०’ से एक गो शेष बचा—गो औ । ‘गोतो णित्’ से सर्वनामस्थान परे होने पर णिद्वत् होगा । ‘अघो ङिति’

से ओ को वृद्धि आदेश हुआ—औ, गौ+औ। 'एचोऽयवायावः' से और को आव—ग
आव् औ=गावौ।

प्रथमा बहुवचन में गो गो गो जस्। 'सरूणणा०' से एक गो शेष वचा—
गो जस्। 'चुटू' से ज् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप—गो अस्। सर्वनामस्थान
परे होने से णित् के समान कार्य होगा। 'अचो ङिति' से गो के ओ को वृद्धि
होकर गौ+अस्। 'एचोऽयवायावः' से आव्—ग् आव् अस्=गावस्। 'ससजुषोः रु'
से रु—गावरु, पुनः गावर्। 'खरवसान०' से र् को विसर्ग करने पर—गावः।

सम्बोधन के एकवचन में प्रथमा के ही समान—हे गो सु। सु में उ की
इत्संज्ञा और लोप—हे गो स्। 'गोतो णित्' से णित् के समान कार्य होगा। 'अचो
ङिति' से थो कां वृद्धि औ—हे गौस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु—हे गौरु। उ
की इत्संज्ञा और लोप—हे गौर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग—हे गौः।

सम्बोधन के द्विवचन और बहुवचन में भी प्रथमा के ही समान—हे गावौ,
हे गावः।

द्वितीया एकवचन में गो+अम् होने पर 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप प्राप्त था।
किन्तु 'अमि पूर्वः' (६। १। १०७) को बाधित कर 'गोतो णित्' (७१—६०) प्राप्त
हुआ। णित् के समान होना चाहिये, किन्तु अग्रिम सूत्र से आ एकादेश होगा—

२१४. औतोऽम्शसोः । ६। ६१.

औतोऽम्शसोरचि आकार एकादेशः। गाम्, गावौ, गाः। गवा, गवे,
गोः, गोः इत्यादि।

यदि ओ के बाद अम् या शस् विभक्तिप्रत्यय का अ हो तो पूर्व और
पर (ओ+अ) के स्थान पर 'आ' एकादेश होता है।

अतः 'गो+अम्' में आ एकादेश होकर—गाम्। द्वितीया द्विवचन में प्रथमा
के ही समान गो गो+औट्। ट् की इत्संज्ञा और लोप—गो+औ। 'गोतो णित्' से
णित् के समान कार्य होगा। 'अचो ङिति' से ओ को वृद्धि औ—गौ औ।
'एचोऽयवायावः' से ग् आव् औ=गावौ।

द्वितीया बहुवचन में— गो गो गौ शस् । गो+शस् । 'लशक्वतद्धिते' से श् की इत्संज्ञा होने पर लोप—गो+अस् । 'औतोऽम्शसोः' से शस् विभक्ति का अ पर रहते आ एकादेश हुआ—गास् । 'ससजुषोः रु' और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से क्रमशः रुत्व और विसर्ग करने पर—गाः ।

तृतीया एकवचन में—गो+टा । 'चुटू' से ट् की इत्संज्ञा और लोप—गो+आ । 'एचोऽयवायावः' से ओ को अव् होकर ग् अव् आ=गवां ।

तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में—गो गोभ्याम् । 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' से एक गो शेष रहकर—गोभ्याम् । तृतीया बहुवचन में गो गो गो भिस्=गो भिस्=गोभिरु=गोभिर् से र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—गोभिः ।

चतुर्थी एकवचनमें गो+डे । 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप—गो ए । 'एचोऽयवायावः' से ओ को अव् होकर—ग् अव् ए=गवे । चतुर्थी बहुवचन में गो गो गो भ्यस्=गोभ्यस्=गोभ्यरु=गोभ्यर्=गोभ्यः ।

पंचमी एकवचन में गो+डसि । इ और ड् को लोप होने पर—गो अस् । 'ड्सिडसोश्च' (एङ् के बाद डसि और डस् का ह्रस्व अ आवे तो पूर्वरूप एकादेश होता है, अर्थात् ओ+अ=ओ) । पूर्वरूप एकादेश करने पर—गोस् । स को 'ससजुषो रुः' से रु—गोरु । उ की इत्संज्ञा और लोप—गोर् । 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—गोः । इसी प्रकार षष्ठी एकवचन में गो+डस्=गो+अस्=गोस्=गोरु=गोर्=गोः ।

षष्ठी एवं सप्तमी के द्विवचन में—गो गो ओस् । एक गो शेष बचने पर गो ओस् । 'एचोऽयवायावः' से गो के ओ को अव् आदेश—ग् अव् ओस् =गवोस् से स् को रुत्व और र् को विसर्ग करने पर—गवोः ।

षष्ठी बहुवचन में गो गो गो आम् । 'सरूपाणां' से एक गो शेष बचकर—गो आम् । 'एचोऽयवायावः' से ओ को अव् आदेश करने पर—ग् अव् आम्=गवाम् ।

सप्तमी एववचन में—गो डि । ड् का 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और फिर

लोप करने पर—गो इ । 'एचोऽयवायावः' से ओ को अच्-ग् अच् इ=गवि । सप्तमी बहुवचन में—गो गो गो सुप् । एक गो शेष बचने पर—गो सुप् । 'प्' की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप—गो सु । 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को मूर्धन्य होकर—गोषु ।

ओकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द 'गो' के रूप इस प्रकार हुए—

प्रथमा	गौः	गावौ	गावः
द्वितीया	गाम्	"	गाः
तृतीया	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
चतुर्थी	गवे	"	गोभ्यः
पंचमी	गोः	"	"
षष्ठी	"	गवोः	गवाम्
सप्तमी	गवि	"	गोषु
संबोधन	हे गौः	हे गावौ	हे गावः

अजन्तस्त्रीलिंगप्रकरणम्

अजन्त (जिनके अन्त में अच्=स्वर हो) स्त्रीलिंग शब्दों की रूपसिद्धि करते समय अजन्तपुल्लिङ्ग शब्दों के सन्दर्भ में दिये गये अनेक नियमों और सूत्रों को स्मरण रखना होगा। जैसे प्रातिपदिकसंज्ञा सुप् विभक्तिप्रत्यय, एकवचन, द्विवचन, बहुवचन, अवसानसंज्ञा सम्बुद्धिसंज्ञा आदि के सूत्र।

आकारान्त स्त्रीलिंग 'रमा' की रूपसिद्धि

रमा शब्द रम् धातु से अच् प्रत्यय और स्त्रीलिंग टाप् प्रत्यय करने पर निष्पन्न है। प्रातिपादिक संज्ञा होने पर 'ङ्याप्रातिपदिकात्' से सुप् प्रत्यय प्राप्त हुए। प्रथमा विभक्ति में एक रमा की विवक्षा होने पर एकवचन में सु प्रत्यय हुआ—रमा सु। उ की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप होने पर—रमा स्। 'हलङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्पर्कं हल्' (हलन्त से या जिसके अन्त में डी या आप् हो उससे परे सु ति सि प्रत्ययों के अपृक्त हल् का लोप हो) सूत्र से यहाँ रमा के अन्त में आप् होने के कारण उससे परे सु के अपृक्त (एक अल् वाला) प्रत्यय स् का लोप हो जायगा और प्रथमा एकवचन में रूप सिद्ध होगा—रमा।

प्रथमा विभक्ति के द्विवचन में रमा रमा औ होने पर 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' से एक रमा शेष रहेगा—रमा+औ। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' (यदि अक्-अ इ उ ऋ लृ-के बाद प्रथमा या द्वितीया विभक्ति का अच् आवे तो पूर्व और पर के स्थान पर पूर्व स्वर का दीर्घ एकादेश हो) सूत्र से रमा+औ को पूर्व स्वर का दीर्घ एकादेश प्राप्त हुआ, किन्तु 'दीर्घाज्जसि च' (सूत्र १६२—दीर्घस्वर के बाद जस् या इच् अर्थात् अ को छोड़ कोई स्वर आवे तो पूर्व और पर के स्थान पर पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश नहीं होता) से 'रमा औ' में आ दीर्घ के बाद इच्-औ-आया है अतः पूर्वसवर्णदीर्घ का निषेध हो गया। ऐसी दशा में 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि एकादेश प्राप्त हुआ, तब

२१६. औङ् आपः । ७ । १ । १८

आबन्ताद् अङ्गात् परस्यौङः शी स्यात् । औङ् इति औकारविभक्तेः संज्ञा ।

आबन्त (जिसके अन्त में टाप्, चाप् स्त्रीलिंग प्रत्यय हों) अंग से परे औङ् को शी आदेश हो । औङ् यहाँ (प्रथमा द्विवचन के) औ तथा (द्वितीया द्विवचन के) औद् विभक्ति प्रत्ययों के लिये प्रयुक्त है ।

(सूत्रार्थ—आपः (पंचमी)=आबन्त के बाद, जिसके अन्त में आप् प्रत्यय हो, उसके बाद । शी=शी आदेश हो ('जसः शी' सूत्र से अनुवृत्ति) । औङः (षष्ठी) औङ् के स्थान पर)

इस सूत्र से 'रमा+औ' में आबन्त रमा अंग के बाद औ को शी आदेश हुआ—रमा शी । 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से शी में श् की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप—रमा ई । 'आद्गुणः' से गुण एकादेश होकर सिद्ध हुआ—रमे ।

प्रथमा बहुवचन में—रमा रमा रमा जस् । 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' से एक रमा शेष बंचा—रमा जस् । 'चुटू' से जस् के ज् की इत्संज्ञा और लोप—रमा अस् । 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्ण एकादेश प्राप्त हुआ, किन्तु 'दीर्घाज्जसि' से निषेध हो गया, तब 'अकः सवर्णे दीर्घ' से दीर्घ एकादेश हुआ—रमास् । 'ससजुषोः रु' से स् को रु, रु के उ को उपदेशे० से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप रमास्, र् को विसर्ग होकर—रमाः ।

सम्बोधन के एकवचन में हे रमा+सु आने पर उ की उपदेशे० से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप—हे रमास् होने पर

रमा के आ को ए आदेश करने के लिये अग्रिम सूत्र होगा—

२१७. सम्बुद्धौ च । ७ । ३ । १०६

आप एकारः स्यात् सम्बुद्धौ 'एङ्हस्वाद' इति सम्बुद्धिलोपः । हे रमे, हे रमे, हे रमाः । रमाम्, रमे, रमा ।

सम्बुद्धि परे होने पर आप् को ए आदेश होता है।

यहाँ 'हे रमा स्' में सम्बुद्धि का स् परे है अतः रमा के आ को ए होगा—हे रमे स्। 'एङ्हस्वात्सम्बुद्धेः' (सूत्र १३४ए, ओ और हस्व स्वर के बाद सम्बुद्धि के हल् का लोप होता है) से रमे के ए से परे सम्बुद्धि के हल् स् का लोप होकर 'हे रमे' सिद्ध हुआ।

सम्बोधन के द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा के समान ही 'हे रमे' हे रमाः।

द्वितीया के एक वचन में रमा+अम् ओने पर 'अमि पूर्वः' सूत्र से पूर्वरूप होकर—रमाम्।

द्वितीया के द्विवचन में रमा रमा औट्। सरूपाणामेक० से एक रमा शेष बचेगा—रमा औट्। ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप—रमा औ। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश प्राप्त हुआ, 'दीर्घाज्जसि च' से पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश का निषेध। 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि एकादेश प्राप्त होने पर 'औडि आपः' से औ को शी आदेश हुआ—रमा शी। श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप—रमा इ। 'आद्गुणः' से गुण एकादेश होकर—रमे।

द्वितीया बहुवचन में रमा रमा रमा+जस्। 'सरूपाणां०' से एक रमा शेष बचा—रमा जस्। 'चुट्' से ज् की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप—रमा अस्। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश—रमास्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु आदेश, उ को उपदेश० से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप करने पर—रमार। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को अवसान परे रहते विसर्ग होकर—रमाः।

तृतीया एकवचनमें रमा+टा होने पर 'चुट्' से ट् की इत्संज्ञा और लोप—रमा आ। अब अग्रिम सूक्त द्वारा रमा के आ को ए आदेश होगा—

२१८. आडि चापः । ट् । ३ । १०५

आडि ओसि चाप एकारः। रमया, रमाभ्याम्, रमाभिः।

आङ् या ओस् परे रहने पर आप् को ए आदेश होता है।

अतः रमा आ में आङ् परे रहते रमा के आ को ए आदेश हुआ—रमे आ। 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ए को अय्—रम् अय् आ=रमया सिद्ध हुआ।

तृतीया द्विवचन में रमा रमा भ्याम्। 'सरूपाणा०' से एक रमा शेष बचा—रमा भ्याम्=रमाभ्याम्।

तृतीया बहुवचन में रमा रमा रमा भिस्। 'सरूपाणा०' से एक रमा शेष बचा—रमाभिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु रमाभिरु। उ की 'उपदेशे०' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप—रमाभिर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से अवसान परे रहते र् को विसर्ग होकर रमाभिः सिद्ध हुआ।

चतुर्थी एकवचन में रमा+डे। 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा और लोप—रमा ए होने पर विभक्ति को याद् का आगम करने के लिये अग्रिम सूत्र प्राप्त होगा—

२१६. याडापः । ७ । ३ । ११३

आपो डितो याद्। वृद्धि।

आबन्त अंग से परे डित् विभक्ति हो तो विभक्ति को याद् का आगम होता है।

(आबन्त=जिसके अन्त में आप् प्रत्यय है। डित्=जिसमें ड् की इत्संज्ञा हुई तो। याडापः=याद् आपः। आपः (पंचमी) आप् से परे 'घेर्ङिति' से डिति=डित् विभक्ति परे रहते। याद्=याद् आगम हो।) 'रमा ए' मे ए डित् विभक्ति है—(डे को ए हुआ है) अतः विभक्ति को याद् का आगम हुआ। याद् आगम टित् है अतः 'आद्यन्तौ टकितौ' से विभक्ति के पहले होगा रमा याद् ए। ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप—रमा या ए। 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि एकादेश होकर—रमायै।

चतुर्थी द्विवचन में तृतीया द्विवचन के समान ही—रमाभ्याम्। चतुर्थी बहुवचन में रमा रमा रमा भ्यस् से एक रमा शेष वचकर—रमाभ्यस्। 'ससजुषोः रुः' से रु। उ की इत्संज्ञा और लोप—रमाभ्यर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग होकर—रमाभ्यः।

पंचमी एकवचन में रमा+डसि। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इ की इत्संज्ञा और लोप। 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा और फिर लोप होकर—रमा अस्। 'याडापः' सूत्र से डित् विभक्ति को याद् का आगम हुआ—रमा याद् अस्।

ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप-रमाया अस्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ एकादेश होकर-रमायास्। 'ससजुषोः रु' से स् को रु। 'उपदेशे०' से उ की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप-रमायार्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग होकर-रमायाः।

पंचमी द्विवचन और बहुवचन में चतुर्थी विभक्ति के समान ही-रमाभ्याम्, रमाभ्यः।

षष्ठी एकवचन में पंचमी एकवचन के समान ही रमा+ङस्। ङ् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप-रमा अस्। 'याडापः' से विभक्ति को याट् का आगम, टित् होने से 'आद्यन्तौ टकितौ' से विभक्ति के पहले याट् होगा-रमा याट् अस्। ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा 'तस्य लोपः' से लोप-रमा या अस्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ एकादेश-रमायास्, रमायारु, रमायार् 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग होकर-रमायाः।

षष्ठी द्विवचन में रमा रमा ओस्। 'सरूपाणा०' से एक रमा शेष बचा-रमा ओस्। 'आङि चापः' से (आङ् या ओस् पर रहने पर आप् के आ को ए आदेश) रमा के आ को ए-रमे ओस्। 'एचोऽयवायावः' से ए को अय-रमयोस्। 'ससजुषोः रु' से स् को रु। रु में उ की इत्संज्ञा और लोप-रमयोर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग-रमयोः।

षष्ठी बहुवचन में रमा रमा रमा आम्। 'सरूपाणा०' से एक रमा शेष-रमा आम्। 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से आबन्त से परे आम् को नुट् का आगम-रमा नुट् आम्। ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप, उ की उपदेशे० से इत्संज्ञा और लोप होने पर-रमा नाम्। 'अटकुप्वाङनुभ्यवायेऽपि' से न् को ण् होकर-रमाणाम्।

सप्तमी एकवचन में रमा+ङि। 'डेराम्नद्याम्नीभ्यः' (नद्यन्त, आबन्त और नी शब्द के बाद ङि को आम् आदेश होता है) से ङि को आम् आदेश होकर-रमा आम्। 'याडापः' से आप् के बाद ङित् विभक्ति होने पर विभक्ति को याट् का आगम होता है। यहाँ आम् ङि के स्थान पर हुआ है अतः ङित् है और इसे याट् का आगम हुआ। याट् टित् (=ट् की इत्संज्ञावाला) है अतः 'आद्यन्तौ टकितौ' से आदि में होगा-रमा याट् आम्। ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप होने पर-रमाया आम्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ होकर-रमायाम्।

सप्तमी द्विवचन में षष्ठी द्विवचन के समान रमा ओस्-रमे ओस्=रमयोस्-रमयोरु-रमयोर्-रमयोः ।

सप्तमी बहुवचन में रमा रमा रमा सुप् । 'सरूपाणां' से एक रमा शेष बचा-रमा सुप् । प् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, तस्य लोपः से लोप हुआ-रमासु ।

इस प्रकार आकारान्त स्त्रीलिंग रमा शब्द के रूप हुए

प्रथमा	रमा	रमे	रमाः
द्वितीया	रमाम्	"	"
तृतीया	रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः
चतुर्थी	रमायै	"	रमाभ्यः
पंचमी	रमायाः	"	"
षष्ठी	"	रमयोः	रमाणाम्
सप्तमी	रमायाम्	"	रमासु
संबोधन	हे रमे	हे रमे	हे रमाः

इकारान्त स्त्रीलिंग 'मति'

इकारान्त स्त्रीलिंग 'मति' शब्द के रूपों की सिद्धि में दो नये सूत्र आते हैं, शेष सूत्र पूर्ववर्ती शब्दों की सिद्धि के प्रकरण में आ चुके हैं।

प्रथमा एकवचन में मति+सु होने पर उ की 'उपदेशे ऽजनुनासिक इत्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप—मतिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। 'उपदेशे०' से उ की इत्संज्ञा और लोप होने पर—मतिर्। 'खरवासनयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग होकर—मतिः।

प्रथमा द्विवचन में मति मति औ। 'सरूपाणा०' से एक मति शेष बचा—मति औ। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्णदीर्घ होकर—मती।

प्रथमा बहुवचन में मति मति मति जस्। 'सरूपाणा०' से एक मति शेष होकर—मति जस्। 'चुटू' से ज् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप होकर—मति अस्। 'जसि च' से जस् परे रहने पर ह्रस्व अंग को गुण आदेश होता है अतः मति के इ को ए आदेश होकर—मते अस्। 'एचोऽयवायावः' से ए को अय्—मतयस्। 'ससजुषो रुः' से स् को रु। उ की इत्संज्ञा और लोप। मतेयर्। 'खरवासनयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग करने पर—मतयः।

द्वितीया एकवचन में मति+अम्। 'अमि पूर्वः' से इ और अ के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होकर—मतिम्।

द्वितीया द्विवचन में प्रथमा द्विवचन के समान ही मति मति औट्—मति औट्—मति औ—'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से दीर्घ—मती।

द्वितीया के बहुवचन में मति मति मति शस्। 'सरूपाणामेक०' से एक मति शेष बचा—मति शस्। 'लशक्वतद्धिते' से श् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप—मति अस्। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से इ+अ के स्थान पर ई—मतीस्। चूँकि 'मति' शब्द स्त्रीलिंग है, अतः 'तस्माच्छसो नः पुंसि' नहीं लागू होगा, क्योंकि 'पुंसि' कहकर स्पष्ट कर दिया गया है कि पुल्लिंग शब्द के साथ ही स् को न हो। अतः मतीस् में स् को 'ससजुषो रुः' से रु, 'उपदेशे०' से उ की इत्संज्ञा

‘तस्य लोपः’ से लोप—मतीर्। ‘खरवसानयोर्विसर्जनीयः’ से र् को विसर्ग करने पर—मतीः।

तृतीया एकवचन में मति+टा। ‘युट्’ से ट् की इत्संज्ञा, ‘तस्य लोपः’ से लोप—मति आ। चूँकि ‘मति’ ह्रस्व इकारान्त है अतः ‘शेषो घ्यसखि’ सूत्र से घिसंज्ञा हुई, किन्तु यह स्त्रीलिंग है अतः टा के आ को ‘आडो नाऽस्त्रियाम्’ सूत्र से ‘ना’ नहीं होगा। अब ‘मति आ’ में —‘इको यणचि’ से इ को य् आदेश होकर सिद्ध होगा—मत्या।

तृतीया द्विवचन में मति मति भ्याम्। ‘सरूपाणां’ से एक मति शेष बचा—मतिभ्याम्। तृतीया बहुवचन में मति मति मति भिस्—मतिभिस्—स् का रु—मतिभिरु—मतिभिर्—र् को विसर्ग करने पर—मतिभिः।

चतुर्थी एकवचन में मति+डे। ड् की ‘लशक्वतद्धिते’ से इत्संज्ञा, ‘तस्य लोपः’ से लोप—मति ए। ‘शेषो घ्यसखि’ से मति की घिसंज्ञा होती है अतः ‘घेडिति’ (ङित् प्रत्यय परे होने पर घिसंज्ञक को गुण हो) से मति के इ को गुण ओ आदेश प्राप्त होता है तब अग्रिम सूत्र के अनुसार इकारान्त और उकारान्त स्त्रीलिंग शब्द भी ङित् प्रत्यय के परे रहते विकल्प से नदीसंज्ञक माने जाते हैं (दीर्घ ईकारान्त और दीर्घ ऊकारान्त केवल स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होनेवाले शब्दों की नदी संज्ञा होती है जैसे गौरी, नदी, वधू) —

२२२. ङिति ह्रस्वश्च १। ४। ६

इयँडुवँङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ, ह्रस्वौ च इवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति। मत्यै, मतये। मत्याः, मत्याः, मतेः, मतेः।

स्त्री शब्द को छोड़कर जिस दीर्घ ई और ऊ को इयङ् और उवङ् आदेश होता है और जो नित्यस्त्रीलिंग होते हैं उनकी ङित् प्रत्यय परे रहने पर विकल्प से नदी संज्ञा होती है। इसी प्रकार स्त्रीलिंग में ह्रस्व इकारान्त और ह्रस्व उकारान्त की भी ङित् प्रत्यय परे रहने पर विकल्प से नदी संज्ञा होती है।

नदी संज्ञा—‘यूस्त्र्यारव्यौ नदी’ जिनका केवल स्त्रीलिंग में प्रयोग होता है ऐसे दीर्घ ईकारान्त और दीर्घ ऊकारान्त शब्दों की नदी संज्ञा होती है।

मति शब्द घिसंज्ञक है, डित् प्रत्यय पर होने पर ‘घेर्ङिति’ से गुण होता किन्तु ‘ङिति ह्रस्वश्च’ सूत्र डित् प्रत्यय पर रहने पर विकल्प से नदी संज्ञा का विधान भी करता है। इस कारण विकल्प से दो रूप होंगे (१) नदी संज्ञा होने पर (२) नदी संज्ञा न होकर घिसंज्ञा होने के कारण। नदी संज्ञा होने पर मति+ङे को ‘मति ए’ होने की स्थिति में ‘आण्णद्याः’ (नदीसंज्ञक से परे डित् प्रत्यय हो तो प्रत्यय को आट् का आगम होता है) से डित् प्रत्यय ए को आट् आगम हुआ, आट् टित् होने से आदि में होगा—मति आट् ए। ट् की ‘हलन्त्यम्’ से इत्संज्ञा, ‘तस्य लोपः’ से लोप—मति आ ए। ‘आटश्च’ (आट् को स्वर पर रहते वृद्धि हो) सूत्र से आ और ए को वृद्धिसंज्ञक स्वर ऐ एकादेश हुआ—मति ऐ। ‘इको यणचि’ से यण्—मत्य् ऐ=मत्यै।

नदी संज्ञा न करने पर घिसंज्ञा होगी और ‘घेर्ङिति’ से ‘मति ए’ में इ को गुण ए होगा—मते ए। ‘एचोऽयवायावः’ सूत्र से ए को अय्। मत् अय् ए=मतये।

चतुर्थी द्विवचन में मति मति भ्याम्=मति भ्याम्=मतिभ्याम्। चतुर्थी बहुवचन में मति मति मति भ्यस्= मतिभ्यस्—मतिभ्यर्—मतिभ्यः—मतिभ्यः।

पंचमी एकवचन में मति+ङसि। ङसि के इ की ‘उपदेशो’ से इत्संज्ञा और ‘तस्य लोपः’ से लोप, ङ् की ‘लशक्वतद्धिते’ से इत्संज्ञा और ‘तस्य लोपः’ से लोप—मति अस्। (१) ‘ङिति ह्रस्वश्च’ से विकल्प से मति की नदी संज्ञा होने पर ‘आण्णद्याः’ से आट् का आगम—मति आट् अस्। आट् के ट् की ‘हलन्त्यम्’ से इत्संज्ञा, ‘तस्य लोपः’ से लोप—मति आ अस् ‘आटश्च’ से आ+अ को वृद्धि एकादेश—मति आस्। ‘इको यणचि’ से इ को य् आदेश होकर—मत्यास्। स् को ‘ससजुषोः रुः’ से रु, रु में उ की इत्संज्ञा और लोप—मत्यार्। ‘खरवसानयोर्विसर्जनीयः’ से र् को विसर्ग करने पर मत्याः। (२) नदी संज्ञा न होने पर घिसंज्ञा होगी। मति+अस् में चूंकि अस् डित् प्रत्यय है अतः ‘घेर्ङिति’ से इ को गुण आदेश—मते

अस्) 'डसिडसोश्च' से डसि प्रत्यय परे रहते मते के ए और अस् के अ दोनों के स्थान पर पूर्वरूप 'ए' आदेश होगा—मतेस्। स् को 'ससजुषोः रुः' से रु—मतेरु। उ की इत्संज्ञा और लोप होकर—मतेर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग—मतेः।

पंचमी द्विवचन में मति मति भ्याम्—मति भ्याम्=मतिभ्याम्। पंचमी बहुवचन में मति मति मति भ्यस्=मति भ्यस्=मतिभ्यरु—मतिभ्यर्—मतिभ्यः।

षष्ठी एकवचन में मति+डस् होने पर ड् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप—मति+अस्। तब पंचमी एकवचन के समान ही दो रूप होंगे (१) 'डिति ह्रस्वश्च' से नदी संज्ञा करने पर 'आण्द्यः' से आट् का आगम 'आटश्च' से वृद्धि एकादेश—मतिआस्। 'इको यणचि' से यण्—मत्यास्=मत्याः। (२) नदी संज्ञा न होने पर धिसंज्ञा होगी 'घेर्ङिति' से गुण—मते अस्। 'डसिडसोश्च' से पूर्वरूप एकादेश—मतेस्—मतेरु—मतेर्—मतेः।

षष्ठी द्विवचन में मति मति ओस् में एक मति शेष वचने पर मति ओस्। 'इको यणचि' से इ को य्—मत् य् ओस्=मत्योस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु, उ को इत्संज्ञा होकर मत्योर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग—मत्योः।

षष्ठी बहुवचन में मति मति मति आम्। 'संरूपाणां' में एक मति शेष बचा—मति आम्। 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से ह्रस्वस्वरान्त मति से परे आम् को नुट् आगम होगा, टित् होने से आम् के आदि में होगा—मति नुट् आम्। ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप, उ की 'उपदेशे' से इत्संज्ञा और लोप—मति नाम्। 'नामि' से नाम् परे रहते अजन्त अंग को दीर्घ होता है अतः इ को दीर्घ होकर—मतीनाम्।

सप्तमी एकवचन में—मति डि। ड् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप—मति इ। डित् विभक्ति परे रहते 'डिति ह्रस्वश्च' से विकल्प से नदी संज्ञा करने पर (१) 'डेराम्नामनीभ्यः' से डि को आम् प्राप्त होगा और साथ ही 'औत्' (सूत्र १८४) से औ आदेश भी प्राप्त होगा। इन दोनों में डेराम्नामनीभ्यः ७।३।

११६ और औत् ७।३। ११८ में 'औत्' परसूत्र है 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' (सूत्र ११३) से औ ही होना चाहिये, किन्तु ऐसी स्थिति में अग्रिम सूत्र डि के स्थान पर आम् का ही आदेश करता है।—

२२३. इदुद्भ्याम् । ७।३। ११७

इदुद्भ्यां नदीसंज्ञकाभ्यां परस्य डेराम् । मत्याम् मतौ । शेषं हरिवत् ।
नदीसंज्ञक ह्रस्व इ और ह्रस्व उ के बाद डि को आम् आदेश ही होता है ।

अतः मति+इ में इ को आम् होकर मति आम् । 'आण्णद्याः' से आट् का आगम होगा और 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट् का आगम भी प्राप्त होगा, परन्तु तुल्य बल होने से पर कार्य आट् का आगम ही होगा— मति आट् आम् । ट् को 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप—मति आ आम् । 'आटश्च' से वृद्धि करने पर मति आम् । 'इको यणचि' से इ को य् आवेश होकर—मत्याम् ।

(२) नदी संज्ञा न करने पर धि संज्ञा होगी 'मति+इ' होने पर 'अच्च घेः' से डि को औ होगा और धिसंज्ञक को अ आदेश होगा । मति के इ को अ हुआ तथा डि के इ को औ हुआ—मत+औ 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि एकादेश करने पर—मतौ ।

सप्तमी द्विवचन में षष्ठी द्विवचन के समान ही—मत्योः । सप्तमी बहुवचन में मति मति मति सुप् के बाद मति सुप् हुआ । प् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप—मति सु 'आदेशप्रत्ययोः' से सु को मूर्धन्य—मतिषु ।

सम्बोधन के एकवचन में हे मति सु । उ की इत्संज्ञा और लोप होने पर हे मति स् । 'ह्रस्वस्य गुणः' सूत्र से सम्बुद्धि परे होनेपर ह्रस्वान्त अंग को गुण आदेश होता है, अतः मति के इ को गुण 'ए' आदेश होकर—हे मते स् । 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' से एङन्त से परे सम्बुद्धि के स् का लोप होकर—हे मते!

द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा के समान—हे मती, हे मतयः

‘मति’ इकारान्त स्त्रीलिंग के रूप इस प्रकार हुए।

प्रथमा	मतिः	मती	मतयः
द्वितीया	मतिम्	..	मतीः
तृतीया	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
चतुर्थी	मत्यै, मतये	..	मतिभ्यः
पंचमी	मत्याः, मतेः	..	..
षष्ठी		मत्योः	मतीनाम्
सप्तमी	मत्याम्, मतौ	..	मतिषु
संबोधन	हे मते!	हे मती	हे मतयः।

ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द ‘गौरी’

गौरी (=पार्वती) शब्द दीर्घ ईकारान्त और नित्य स्त्रीलिंग है, अतः ‘यू स्त्राख्यौ नदी’ सूत्र से नदी संज्ञा होती है।

(‘यू स्त्राख्यौ नदी’ सूत्र का अर्थ है ‘ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिंगौ नदीसंज्ञौ स्तः’ अर्थात् जिसके अन्तमें ईत् (-दीर्घ ई) ऊत (=दीर्घ ऊ) हो और जो नित्य ही स्त्रीलिंग हों ऐसे शब्द की नदी संज्ञा होती है।)

प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय आने पर—गौरी सु। ‘उपदेशेऽजनुनासिक इत्’ से उ की इत्संज्ञा, ‘तस्य लोपः’ से लोप करने पर—गौरी स्। चूँकि गौरी गौर से डीष् प्रत्यय करने से बना है अतः ड्यन्त है ‘हलङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्पृक्तं हल्’ सूत्र से ड्यन्त (जिसके अन्त में डी प्रत्यय हो) से परे अपृक्त हल् सु के स् का लोप होता है और रूप सिद्ध हुआ—गौरी।

प्रथमा द्विवचन में गौरी गौरी औ होने पर ‘सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ’ से एक गौरी शेष बचा—गौरी औ। ‘प्रथमयोः पूर्वसवर्णः’ से पूर्वसवर्ण दीर्घ प्राप्त हुआ, किन्तु ‘दीर्घाज्जसि’ सूत्र से दीर्घ स्वरान्त से परे जस् और इच् प्रत्याहार का स्वर परे होने पर पूर्वसवर्णदीर्घ आदेश नहीं होता। यहाँ ‘गौरी औ’ में दीर्घ ई से परे इच् प्रत्याहार का वर्ण औ है अतः पूर्वसवर्णदीर्घ नहीं होगा। ‘इको

यणचि' से ई को य् आदेश होगा—गौर् य् औ=गौर्यौ। 'अचो रहाभ्यां द्वे' से र् से परे य् को द्वित्व भी होता है—गौर्य्यौ।

प्रथमा बहुवचन में—गौरी गौरी गौरी जस्। एक गौरी शेष बचकर—गौरी जस्। 'चुटू' से ज् की इत्संज्ञा और लोप्—गौरी अस्। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश प्राप्त हुआ किन्तु 'दीर्घाज्जसि' से निषेध हो गया। तब 'इको यणचि' से ई को य्—गौर् य् अस्=गौर्यस्। स् को 'ससजुषोः रुः' से रु, रु में उ की इत्संज्ञा और लोप्—गौर्यर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग—गौर्यः। 'अचो रहाभ्यां द्वे' से य् को द्वित्व भी हो सकता है—गौर्य्यः।

संबोधन एकवचन में हे गौरी+सु। उ की इत्संज्ञा और लोप् हे गौरी स्। गौरी की 'यू स्याख्यौ नदी' से नदी संज्ञा होती है अतः 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' से सम्बुद्धि परे रहने पर अम्बार्थ (=माता अर्थ वाले) एवं नदीसंज्ञक अंग को ह्रस्व हो जाता है। यहाँ हे गौरी स् में गौरी को ह्रस्व हुआ—हे गौरि स्। 'एङह्रस्वात्सम्बुद्धे' से ह्रस्वान्त गौरि से परे सम्बुद्धि के स् का लोप होकर—हे गौरि।

संबोधन के द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा विभक्ति के ही समान—हे गौर्यौ, हे गौर्य्यः।

द्वितीया एकवचन में—गौरी+अम्। 'अमि पूर्वः' से ई+अ को पूर्वरूप एकादेश होकर—गौरीम्।

द्वितीया द्विवचन में प्रथमा द्विवचन के समान ही गौरी+औट्। ट् की इत्संज्ञा और लोप्—गौरी औ=गौर्यौ।

द्वितीया बहुवचन में—गौरी गौरी गौरी शस्। 'सरूपाणां' से एक गौरी शेष बचा—गौरी शस्। 'लशक्वतद्धिते' से श् की इत्संज्ञा और लोप्—गौरी अस्। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से ई+अ को पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश हुआ (यहाँ 'दीर्घाज्जसि' से निषेध नहीं होगा, क्योंकि दीर्घ स्वरान्त गौरी से परे न तो जस् है और न इच् प्रत्याहार का स्वर है।) पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होने पर—गौरीस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु, रु में उ की इत्संज्ञा और लोप्—गौरीर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग—गौरीः।

तृतीया एकवचन में—गौरी+टा। 'चुटू' से ट की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप—गौरी आ। 'इको यणचि' से ई को य होकर—गौर्या। 'अचो रहाभ्यां द्वे' से 'गौर्या' भी होगा।

तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में—गौरी गौरी भ्याम्। 'सरूप्राणामे०' से एक गौरी शेष बचकर गौरीभ्याम्।

तृतीया बहुवचनमें—गौरी गौरी गौरी भिस्। एक गौरी शेष बचने पर—गौरीभिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु में उ की इत्संज्ञा और लोप—गौरीभिर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र का विसर्ग—गौरीभिः।

चतुर्थी एकवचन में—गौरी+डे। 'लशक्वतद्धिते' से ड की इत्संज्ञा और लोप—गौरी ः। गौरी की 'यू स्त्र्याख्या नदी' सूत्र से नदी संज्ञा होती है। तब

१६६. आण् नद्याः । ७ । ३ । ११२

(नद्यन्तात् परेषां ङितामाडागमः)

नद्यन्त शब्दों से परे आये हुए ङित् प्रत्यय को आट् आगम हो। गौरी नद्यन्त है इससे परे डे ङित् प्रत्यय है, अतः उसे आट् आगम होगा जो टित् (ट की इत्संज्ञा वाला) होने से 'आद्यन्तौ टकितौ' सूत्रानुसार प्रत्यय के आदि में होगा—गौरी आट् ए। आट् में 'हलन्त्यम्' से ट की इत्संज्ञा और लोप—गौरी आ ए। तब—

१६७. आटश्च । ६ । १ । ८८

(आटो अचि परे वृद्धिरेकादेशः)

यदि आट् के बाद अच् आवे तो पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक स्वर आदेश हो।

यहाँ आट् के आ से परे ए है। दोनों के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक स्वर ऐ आदेश होगा—गौरी ऐ। 'इको यणचि' से ई को य आदेश करने पर—गौर ए ऐ—गौर्ये 'अचो रहाभ्यां द्वे' से—गौर्ये।

चतुर्थी और पंचमी के बहुवचन में—गौरी गौरी गौरी भ्यस् । 'सरूपाणां से एक गौरी शेष—गौरीभ्यस् । 'ससजुषोः रुः' से स् को रु— गौरीभ्यरु । उ क लोप—गौरीभ्यर् । 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग—गौरीभ्यः ।

पंचमी एकवचन में—गौरी+ङ्सि । इ और ङ् को लोप होनेपर—गौरी अस् । 'यू स्त्र्याख्यौ नदी' से गौरी की नदी संज्ञा । 'आण्णद्याः' सूत्र से नदीसंज्ञक गौरी से ङित् ङ्सि प्रत्यय आने के कारण प्रत्यय को आट् का आगम हुआ, जटित् होने के कारण 'आद्यन्तौ टकितौ' से प्रत्यय के आदि में होगा—गौरी आट् अस् । ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप—गौरी आ अस् । 'आटश्च' से आट् के आ से परे अच् होने पर दोनों के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक स्वर होगा—आ+अ के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक स्वर (आ, ऐ ओं में से) 'स्थानेऽन्तरतम' से आ एकादेश होगा—गौरी आस् । 'इको यणचि' से ई को य्—गौर य् आस्=गौर्यास् । 'ससजुषोः रुः' से स् को रु । रु में उ की इत्संज्ञा और लोप—गौर्यार् । 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग—गौर्याः । द्वित्व होने पर गौर्याः । षष्ठी एकवचन में—गौरी+ङस् से गौरी अस् होने पर इसी प्रकार 'आण्णद्याः' से आट् आगम—गौरी आट् अस्—गौरी आ अस् । 'आटश्च' से वृद्धिएकादेश आ—गौरी आस् । 'इको यणचि' से यण्—गौर य् आस्=गौर्यास् । रुत्वा एवं विसर्ग के बाद गौर्याः ।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में—गौरी गौरी ओस् । 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' से एक गौरी शेष—गौरी ओस् । 'इको यणचि' से ई को य्—गौर य् ओस्=गौर्योस् । 'ससजुषोः रुः' से स् को रु । रु में उ की इत्संज्ञा और लोप—गौर्योर् । 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग करने पर—गौर्योः ।

षष्ठी बहुवचन में गौरी आम् । 'यू स्त्र्याख्यौ नदी' से गौरी की नदी संज्ञा होती है । 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' (सूत्र १४८) से नद्यन्त गौरी से परे आम् रहने पर आम् को नुट् आगम होगा—गौरी नुट् आम् । 'हलन्त्यम्' से नुट् के ट् की इत्संज्ञा और लोप, पुनः उ का लोप करने पर—गौरीनाम् । 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से न् के ण् करने पर—गौरीणाम् ।

सप्तमी एकवचन में गौरी+ङि। होने पर—

१६८—ङेराम्नद्याम्नीभ्यः । ७ । ३ । ११६

(नद्यन्ताद् आबन्ताद्, नीशब्दाच्च परम् ङेराम्)

नद्यन्त, आबन्त (जिसके अन्त में स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय आप् हो), और नी शब्द से परे ङि को आम् आदेश हो। गौरी नदीसंज्ञक दीर्घ ई से अन्त होने वाला शब्द है। इससे परे ङि को आम् आदेश होगा 'अनेकाल् शित्सर्वस्य' से आम् अनेकाल् (=अनेक वर्षों वाला) होने से सम्पूर्ण ङि के स्थान पर होगा—गौरी आम्। 'आण्णद्याः' से नदीसंज्ञक गौरी से परे आम् को आट् आगम होगा, जो टिट् होने से 'आद्यन्तौ टकितौ' सूत्रानुसार प्रत्यय के आदि में होगा—गौरी आट् आम्। ट् की इत्संज्ञा और लोप करने पर—गौरी आ आम्। 'आटश्च' से आ+आ को वृद्धिसंज्ञक स्वर आ, ऐ, औ में से आ एकादेश होगा—गौरी आम्। 'इको यणचि' से ई को य् आदेश करने पर—गौर्य् य् आम्=गौर्याम्।

सप्तमी बहुवचन में गौरी गौरी गौरी सुप्। 'सरूपाणामेकशेष०' से एक गौरी शब्द वचा—गौरी सुप्। सुप् में प् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप—गौरीसु। 'आदेशप्रत्ययोः' से सु को मूर्धन्य करने पर—गौरीषु।

इस प्रकार ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द गौरी, के रूप निम्नलिखित हुए—

प्रथमा	गौरी	गौर्यो	गौर्यः
द्वितीया	गौरीम्	..	गौरीः
तृतीया	गौर्या	गौरीभ्याम्	गौरीभिः
चतुर्थी	गौर्ये	..	गौरीभ्यः
पंचमी	गौर्याः	..	..
षष्ठी	..	गौर्योः	गौरीणाम्
सप्तमी	गौर्याम्	..	गौरीषु
संबोधन	हे गौरि	हे गौर्यो	हे गौर्यः

ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द 'स्त्री'

स्त्री शब्द स्तृ (शब्दसंघातयोः) धातु से इट् प्रत्यय और डीप् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न है। यह ड्यन्त (जिसके अन्त में डी हो) है।

प्रथमा एकवचन में स्त्री+सु होने पर 'उ' की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत् से इत्संज्ञा' 'तस्य लोपः' से लोप-स्त्री स्। 'हल्ङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्पृक्तं हल्' से सु के अपृक्तसंज्ञक हल् स् का लोप होकर रूप बना-स्त्री।

प्रथमा द्विवचन में स्त्री स्त्री औ के बाद-स्त्री औ।

'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश प्राप्त हुआ 'दीर्घाज्जसि' से दीर्घस्वरान्त से परे उसका निषेध हो जायगा, तब 'इको यणचि' से यण आदेश प्राप्त हुआ, तब स्त्री के दीर्घ ई को इयङ् ओदश करने के लिये सूत्र है-

२२७. स्त्रियाः । ६ । ७६

अस्येयङ् स्याद् अजादौ प्रत्यये परे।

स्त्री शब्द के बाद अजादि (अच् से आरम्भ होने वाला) प्रत्यय परे हो तो स्त्री के ई को इयङ् आदेश हो।

(स्त्री को इयङ् आदेश कहा गया है, चूँकि इयङ् आदेश डित् है, अतः 'डिच्च' सूत्र से स्त्री के अन्तिम वर्ण ई को होगा।)

इस प्रकार 'स्त्रीऔ' में ई को इयङ् करने पर-स्त् इयङ् औ। अ,ङ् की इत्संज्ञा और लोप करने पर-स्त् इय् औ=स्त्रियौ।

प्रथमा बहुवचन में स्त्री स्त्री स्त्री जस्। एक स्त्री शब्द शेष बचा-स्त्री जस्। 'जस्' की 'घुटू' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप स्त्री अस्। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश, उसका 'दीर्घाज्जसि' से निषेध, तब 'इको यणचि' प्राप्त हुआ, किन्तु 'स्त्रियाः' सूत्र से स्त्री के ई को इयङ् आदेश हुआ-स्त् इयङ् अस्। अ और ङ् की इत्संज्ञा और लोप करने पर-स्त्रियः।

सम्बोधन एकवचन में हे स्त्री+सु। उ की इत्संज्ञा और लोप-हे स्त्री स्।

‘यू स्त्र्याख्या नदी’ से स्त्री की नदी संज्ञा हुई, ‘अम्बार्थनद्योर्हस्वः’ से सम्बुद्धि पर रहने पर नदीसंज्ञक अंग को हस्व होगा—हे स्त्रि स्। ‘एङ्हस्वात्सम्बुद्धेः’ से हस्व इ से परे सम्बुद्धि के अपृक्त स् का लोप होकर—हे स्त्रि।

सम्बोधन द्विवचन और बहुवचन के रूप तो प्रथमा द्विवचन एवं बहुवचन के ही रूप होते हैं।

यह ध्यान देने योग्य है कि जहाँ भी द्विवचन होगा वहाँ शब्द दो बार और जहाँ बहुवचन वहाँ शब्द तीन बार ग्रहण कर विभक्तिप्रत्यय लगाते हैं। ‘सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ’ से एक ही शेष बचता है।

द्वितीया एकवचन में—स्त्री+अम्। यहाँ दो रूप बनेंगे एक तो सीधे—सीधे ‘अमि पूर्वः’ सूत्र से पूर्वरूप एकादेश करने पर (ई+इ=ई) —स्त्रीम्। दूसरा रूप ई को इयङ् आदेश करने पर बनेगा, किन्तु उसके लिये सूत्र है—

२२८. वाऽम्शसो । ६ । ४ । ८०

अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात्।

अम् और शस् परे होने पर स्त्री शब्द को विकल्प से इयङ् आदेश हो।

स्त्री अम् में स्त्री को इयङ् आदेश हुआ, ‘डिच्च’ से अन्तिम ई के स्थान पर इयङ् होगा—स्त्र् इयङ् अम्। इयङ् में अ, ङ्, लोप होकर—स्त्रियम्।

द्वितीया द्विवचन भी प्रथमा द्विवचन के समान होगा—

स्त्री स्त्री औट्—स्त्री औ=स्त्रियाः’ से इयङ्—स्त्र् इयङ् औ—स्त्र् इय औ=स्त्रियौ।

द्वितीया बहुवचन में भी दो रूप बनेंगे (१) स्त्री+शस् होनेपर श् की ‘लशक्वतद्धिते’ से इत्संज्ञा, ‘तस्य लोपः’ से लोप—स्त्री अस्। ‘प्रथमयोः पूर्वसवर्णः’ से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश—स्त्रीस्। स् को रु, रु को ऋ, ऋ को ए, ए को खरवसानयोर्विसर्जनीयः’ से विसर्ग—स्त्रीः (२) स्त्री+शस्=स्त्री अस्। ‘वाम्शसोः’ से स्त्री के ई को इयङ् आदेश हुआ—स्त्र् इयङ् अस्। इयङ् में अङ् का लोप होकर—स्त्र् इय

अस्=स्त्रियस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु, रु को र, र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीय' से विसर्ग-स्त्रियः।

तृतीया एकवचन में स्त्री+टा। 'चुटू' से ट की इत्संज्ञा, 'तस्यलोपः' से लोप-स्त्री आ। स्त्रीआ 'स्त्रियाः' सूत्र से ई को इयङ् आदेश हुआ-स्त् इयङ् में अङ् का लोप-स्त् इय आ=स्त्रिया।

तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में एक स्त्री शब्द शेष बचने पर सीधे-सीधे-स्त्रीभ्याम्।

तृतीया बहुवचन में भी सीधे-सीधे-स्त्रीभिस्। स् को 'ससजुषोः रुः' से रु, उ की इत्संज्ञा और लोप-स्त्रीभिर्। र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर-स्त्रीभिः।

चतुर्थी एकवचन में स्त्री+ङे। 'लशक्वतद्धिते' से ङ की इत्संज्ञा और लोप होने पर-स्त्री ए। 'यू स्त्र्याख्यौ नदी' से स्त्री शब्द की नदी संज्ञा हुई। 'ङित् ह्रस्वश्च' सूत्र से जिसके स्थान पर इयङ् आदेश होता है ऐसे नित्यस्त्रीलिङ् शब्दों से परे जब ङित् हो तो विकल्प से उस ई ऊ की नदी संज्ञा होती है, किन्तु स्त्री शब्द की नदी संज्ञा विकल्प से नहीं होती अतः दो रूप न होकर एक ही रूप बनेगा।

नदी संज्ञा होने से 'आण्णद्याः' सूत्र से आट् का आगम। टित् होने से प्रत्यय के आदि में-स्त्री आट् ए। ट् की इत्संज्ञा और लोप करने पर-स्त्री अस् ए। 'आटश्च' से आ+ए के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक स्वर ऐ होगा-स्त्री ऐ। अ 'स्त्रियाः' से स्त्री के ई को इयङ् आदेश होगा। इयङ् में अ ङ् का लोप होकर-स्त् इय् ऐ = स्त्रियै।

चतुर्थी बहुवचन में स्त्रीभ्यस् से स् को रुत्व और विसर्ग करने पर स्त्रीभ्यः पञ्चमी एकवचन में-स्त्री+ङसि। इ की 'उपदेशे ऽजनुनासिक इत्' से और 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप करने पर-स्त्री अस्। 'स्त्री' की 'यू स्त्र्याख्यौ नदी' से नदी संज्ञा होने के कारण 'आण्णद्याः' से प्रत्यय को आट् का आगम होगा, जो टित् होने से आदि में होगा - स्त्री आट् अस्। ट् की इत्संज्ञा

और लोप-स्त्री आ अस् । 'आटश्च' से आ+अ के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक आ एकादेश हुआ-स्त्री आस् । 'स्त्रियाः' से स्त्री के ई को इयङ् आदेश होगा और इयङ् में अङ् अनुबन्ध का लोप करने पर स्त्र इय् आस् = स्त्रियास् । स् को 'ससजुषोः रुः' से रु, रु के उ का लोप-स्त्रियार् । 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग करने पर - स्त्रियाः ।

षष्ठी एकवचन में भी उपर्युक्त के समान ही स्त्री+ङस् स्त्रीअस्-स्त्री आट् अस्-स्त्री आ अस्-स्त्री आस्-स्त्र इयङ् आस्-स्त्रियास्-स्त्रियारु-स्त्रियार्-स्त्रियाः ।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में-स्त्री+ओस् । 'स्त्रियाः' से अजादि प्रत्यय परे रहने के कारण स्त्री को इयङ् आदेश, इयङ् डित् होने से 'डिच्च' सूत्र से अन्तिम वर्ण ई के स्थान पर होगा-स्त्र् इयङ् ओस् । इयङ् में अङ् अनुबन्ध का लोप करने पर-स्त्र् इय ओस्=स्त्रियोस् । 'ससजुषोः रुः' से स् को रु-स्त्रियोरु-उ की इत्संज्ञा और लोप होने पर स्त्रियोर् । 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग-स्त्रियोः ।

षष्ठी बहुवचन में स्त्री स्त्री स्त्री आम्=स्त्री आम् । 'स्त्रियाः' से ई को इयङ् प्राप्त होगा, किन्तु 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' से बाद में आये हुए सूत्र ह्रस्वनद्यापो नुट् से नदीसंज्ञक स्त्री शब्द से परे आम् को नुट् का आगम होगा जो टित् होने के कारण आदि में होगा-स्त्री नुट् आम् । अनुबन्ध उट् का लोप करने पर-स्त्री नाम् । 'अट्कुप्वाङ्नुम् व्यवायेऽपि' से न् को ण् आदेश करने पर-स्त्रीणाम् ।

सप्तमी एकवचन में स्त्री+ङि होने पर नदीसंज्ञक स्त्री से परे ङि को 'डेराम्नद्याम्नीभ्यः' से आम् आदेश होगा जो अनेक वर्णों वाला होने के कारण 'अनेकालशित् सर्वस्य' सूत्र से सम्पूर्ण ङि के स्थान पर होगा-स्त्री+आम् । अब 'आणनद्याः' से नदीसंज्ञक से परे डित् प्रत्यय होने पर प्रत्यय को आट् का आगम-स्त्री आट् आम् । ट् की इत्संज्ञा और लोप होने पर-स्त्री आ आम् । 'आटश्च' से आ+आ को वृद्धि एकादेश आ=स्त्री आम् । 'स्त्रियाः' सूत्र से स्त्री के

ई को इयङ् आदेश हुआ। इयङ् में अङ् अनुबन्ध का लोप होने पर—स्तर इ आम=स्त्रियाम्।

सप्तमि बहवचन में स्त्री+सुप्। प् का लोप करने पर—स्त्रीसु। 'आदेशप्रत्यये' से सु को मूर्धन्य होकर—स्त्राधु।

इस प्रकार ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'स्त्री' शब्द के रूप हुए—

प्रथमा	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
द्वितीया	स्त्रियम्, स्त्रीम्	"	स्त्रियः, स्त्रीः
तृतीया	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
चतुर्थी	स्त्रियै	"	स्त्रीभ्यः
पञ्चमी	स्त्रियाः	"	"
षष्ठी	"	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
सप्तमी	स्त्रियाम्	"	स्त्रीषु
संबोधन	हे स्त्रि !	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः

ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द 'वधू'

ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'वधू' शब्द की रूपसिद्धि में ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'गौरी' शब्द की सिद्धि में लगने वाले सूत्र ही द्रष्टव्य हैं।

प्रथमा एकवचन में वधू+सु होने पर उ की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत्संज्ञा और लोप—वधू स्। चूँकि वधू के अन्त में डी नहीं है अतः 'हलङ्याभ्याम्' से स् का लोप नहीं होता। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु—वधूरु। उ की इत्संज्ञा और लोप करने पर—वधुर। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—वधूः।

प्रथमा द्विवचन में वधू वधू औ के बाद 'वधू औ' होने पर 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्ण दीर्घ होना चाहिए, किन्तु 'दीर्घाज्जसि' से निषेध हो जायगा। 'इको यणचि' से ऊ को व् करने पर—वधू व औ=वध्वौ।

इसी प्रकार द्वितीया के द्विवचन में भी—वधू वधू औट्—वधू औट्—वध्वौ=वध्वौ।

प्रथमा बहुवचन में वधू+जस् होने पर 'चुटू' से ज् की इत्संज्ञा और लोप-वधू अस् । 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्ण एकादेश प्राप्त हुआ 'दीर्घाज्जसि' से निषेध होने पर 'इको यणचि' से यण हुआ—ऊ को व्—वध् व अस् = वध्वस् । 'ससजुषोः रुः' से रु, रु में उ की इत्संज्ञा और लोप-वध्वर् । 'खरवासनयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग-वध्वः ।

संबोधन के एकवचन में हे वधू+सु । उ की इत्संज्ञा और लोप हे वधू स् । वधू शब्द की 'यू स्त्र्याख्यौ नदी' से नदीसंज्ञा होती है, अतः 'अम्बार्थनद्योर्हस्वः' से हरव स्वर से परे सम्बुद्धि के स् का लोप हो गया—हे वधु । संबोधन के द्विवचन एवं बहुवचन में प्रथमा के ही समान—हे वध्वौ, हे वध्वः ।

द्वितीया एकवचन में वधू+अम् होने पर 'अभि पूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर-वधूम् ।

द्वितीया बहुवचन में-वधू वधू वधू शस् से वधू शस् होने पर 'लशक्वतद्धिते' से श् की इत्संज्ञा और लोप करने पर-वधू अस् । 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश होगा—ऊ+अ=ऊ वधूस् । 'ससजुषोः रुः' से स् को रु—वधूरु । रु में उ की इत्संज्ञा और लोप-वधूर् । 'खरवासनयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर-वधूः ।

तृतीया एकवचन में-वधू+टा । ट की 'चुटू' से इत्संज्ञा और लोप करने पर-वधूआ । 'इको यणचि' से ऊ को व् आदेश करने पर-व ध् व् आ = वध्वा ।

तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी के द्विवचन में वधू+भ्याम्=वधूभ्याम् । तृतीया बहुवचन में वधू भिस् होने पर स् को रुत्व और विसर्ग करने पर-वधूमिः ।

चतुर्थी एकवचन में-वधू+डे । ड की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप-वधू ए । वधू की 'यू स्त्र्याख्यौ नदी' से नदीसंज्ञा होने के कारण 'आण्णद्याः' सूत्र से उससे परे डित् प्रत्यय को आट् आगम होता है—यहाँ भी डे (ए) डित् प्रत्यय है अतः उसे आट् का आगम हुआ जो टित् होने के कारण प्रत्यय के आदि में होगा—वधू आट् ए । 'ट्' की इत्संज्ञा और लोप-वधू आ ए । 'आटश्च' से आट् के आ एवं ए दोनों के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक स्वर ऐ होगा—वधू ऐ । 'इको यणचि' से यण करने पर-वध् व् ऐ=वध्वै ।

चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में—वधूभ्यस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु, रु को र्, र को 'खरवसा०' से विसर्ग करने पर वधूभ्यः।

पञ्चमी एकवचन में वधू+ङसि और षष्ठी एकवचन में वधू+ङस् होने पर दोनों में अनुबन्ध लोप करने पर—वधू अस्। 'यू स्त्राख्यौ नदी' से वधू की नदी संज्ञा होती है अतः डित् प्रत्यय (ङसि, ङस्) पर रहने पर 'आण्णद्याः' से प्रत्यय को आट् आगम हुआ—वधू आट् अस्। 'ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप करने पर—वधू आ अस्। 'आटश्च' से आ+अ के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक आ एकादेश हुआ—वधू आस्। 'इकोयणचि' से ऊ को व् करने पर वध् व् आस्=वध्वास्। स् को रु, रु को र् और र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—वध्वाः।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में—वधू ओस्। 'इको यणचि' से ऊ को व्—वध् व् ओस्=वध्वोस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु, रु में उ की उपदेशो० से इत्संज्ञा और लोप—वध्वोर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग करने पर—वध्वोः।

षष्ठी बहुवचन में—वधू+आम् होने पर 'वधू' की 'यू स्त्राख्यौ नदी' से नदीसंज्ञा होने के कारण 'हस्वनद्यापो नुट्' से आम् को नुट् का आगम, टित् होने से आदि में आगम—वधू नुट् आम्। अनुबन्ध का लोप करने पर—वधूनाम्। यहाँ न् को ण् नहीं होगा, अतः वधूनाम् सिद्ध हुआ।

सप्तमी एकवचन में—वधू+ङि होने पर चूँकि वधू की 'यू स्त्राख्यौ नदी' से नदीसंज्ञा होती है, अतः 'ङेरात्मन्द्याम्नीभ्यः' से ङि को आम् आदेश होगा—वधू आम्। 'आण्णद्याः' से आम् को आट् का आगम होगा—वधू आट् आम्। ट् की इत्संज्ञा और लोप होने पर—वधू आ आम्। 'आटश्च' से वृद्धिसंज्ञक आ एकादेश होगा—वधू आम्। 'इको यणचि' से ऊ को व् आदेश करने पर—वध् व् आम्=वध्वाम्।

सप्तमी बहुवचन में—वधू सुप्। प् का लोप होने पर—वधूसु। 'आदेशप्रत्ययोः' से दन्त्य स् को मूर्धन्य करने पर—वधूषु।

इस प्रकार ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द 'वधू' के रूप निम्नलिखित हुए।

प्रथमा	वधूः	वध्वौ	वध्वः
द्वितीया	वधूम्	"	वधूः
तृतीया	वध्वा	वधूम्याम्	वधूभिः
चतुर्थी	वध्वै	"	वधूभ्यः
पञ्चमी	वध्वाः	"	"
षष्ठी	"	वध्वोः	वधूनाम्
सप्तमी	वध्वाम्	"	वधूषु
संबोधन	हे वधु !	हे वध्वौ	हे वध्वः

अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्

अकारान्त 'ज्ञान' शब्द

ज्ञान शब्द नपुंसकलिङ्ग है और इसका अन्तिम स्वर अ है, इस प्रकार अजन्त है। ज्ञा धातु से ल्युट् (अन) प्रत्यय लगाकर ज्ञान शब्द निष्पन्न होता है।

प्रथमा एकवचन में ज्ञान+सु होने पर सु को अम् आदेश करने के लिए सूत्र है—

२३४. अतोऽम् ।७ ।१ ।२४

अतोऽङ्गात् क्लीबात् स्वमोरम् । अभिपूर्वः—ज्ञानम् । एङ्हस्वादिति हल्लोपः — हे ज्ञान ।

जिसके अन्त में ह्रस्व अ हो ऐसे नपुंसकलिङ्ग अङ्ग से परे यदि सु और अम् हो तो उसे अम् आदेश हो ।

(इसके ठीक पहले सूत्र था 'स्वमोर्नपुंसकात्' ७ ।१ ।२३ जो आगे 'वारि' की रूप सिद्धि में दिया गया है (२४४) उसके अनुसार नपुंसकलिङ्ग से परे सु और अम् का लोप होना चाहिए, किन्तु इस नियम को यहाँ 'अतोऽम्' सूत्र बाधित करता है ।)

ज्ञान+सु में सु (स) के स्थान पर अम् आदेश हुआ ज्ञान+अम् । अम् के म् का 'न विभक्तौ तुस्माः' से लोप नहीं होगा । 'अभिपूर्व' से पूर्वरूप होकर—ज्ञानम् ।

प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में ज्ञान+औ होने पर औ को शी आदेश करने के लिए सूत्र है—

२३५. नपुंसकाच्च ।७ ।१ ।१६

क्लीबाद् औङ्ः शी स्यात् । भसंज्ञायाम्—

नपुंसकलिङ्ग अंग से परे औङ् को शी आदेश होवे ।

(प्रथमा और द्वितीया के औ को ही औङ् संज्ञा होती है, अतः सूत्र की व्याख्या में औङ्=का अर्थ है प्रथमा और द्वितीया द्विवचन के प्रत्यय औ, औट् के स्थान पर।)

अब औ के स्थान पर शी करने पर-ज्ञान शी। शी में श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप करने पर-ज्ञान ई।

'यचि भम्' ११ १४ १५ भसंज्ञा का सूत्र है। इसके अनुसार 'सर्वनामस्थान संज्ञा वाले प्रत्ययों को छोड़कर सु से लेकर कप् प्रत्यय तक के यकारादि (=य से आरम्भ) या अजादि (=स्वर से आरम्भ) प्रत्यय परे हों तो उन प्रत्ययों के पहले आये शब्द की भसंज्ञा होती है।

'ज्ञान औ' से 'ज्ञान ई' करने पर यह ध्यान देने योग्य है कि चूँकि ज्ञान नपुंसकलिङ्ग है अतः इससे परे सुट् (सु और जस् अम् औट्) की सर्वनामस्थान संज्ञा नहीं होगी, क्योंकि सर्वनामस्थान संज्ञा का सूत्र ही है 'सुडनपुंसकग्य' अर्थात् अनपुंसक सुट् को सर्वनामस्थान संज्ञा होती है। यहाँ ज्ञान ई के प्रसंग में ऐसी स्थिति में ज्ञान की भसंज्ञा होगी। भसंज्ञक के अन्तिम अ के लोप हेतु सूत्र है—

२३६. यस्येति च । ६ १४ १५४८ .

ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः । इत्यलोपे प्राप्ते—

भसंज्ञक से परे ई हो या तद्धित प्रत्यय हो तो भसंज्ञक के इवर्ण और अवर्ण का लोप हो।

अतएव यहाँ 'ज्ञान ई' में न् के अ का लोप प्राप्त हुआ, किन्तु अग्रिम वार्तिक द्वारा निषेध हो जायगा—

(वार्तिक २२) औङ्ः श्यां प्रतिषेधः ।

यदि औङ् के स्थान पर शी आदेश हुआ हो तो वहाँ 'यस्येति च' सूत्र लागू नहीं होता।

अन्ततः—'ज्ञान ई' को 'आद्गुणः' सूत्र से गुणएकादेश करने पर सिद्ध हुआ—ज्ञाने।

प्रथमा बहुवचन में ज्ञान+जस् होने पर जस् को शि आदेश करने के लिए सूत्र है—

२३७. जश्शसोः शिः ॥७॥११॥२०

क्लीबाद् अनयोः शिः स्यात् ।

नपुंसकलिङ्ग से परे जस् और शस् को 'शि' आदेश होता है । जस् को शि आदेश करने पर — ज्ञान+शि । 'लशक्वतद्धिते' से श् की इत्संज्ञा—ज्ञान इ ।

यद्यपि 'सुडनपुंसकस्य' से नपुंसकलिङ्ग से परे सुट् (सु और जस् अम् औट्) की सर्वनामस्थान संज्ञा नहीं होती, तथापि 'शि' को सर्वनामस्थान संज्ञा करने के लिए सूत्र है—

२३८. शि सर्वनामस्थानम् । ११४१॥४१

'शि' इत्येतद् उक्तसंज्ञं स्यात् ।

'शि' की सर्वनामस्थान संज्ञा होवे ।

'शि' की सर्वनामस्थान संज्ञा होने पर अब नुम् आगम के लिए सूत्र है—

२३९. नपुंसकस्य झलचः ॥७॥११॥७२

झलन्तभ्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने ।

यदि झलन्त (झल् प्रत्याहार के वर्ण से अन्त होने वाले) या अजन्त नपुंसक लिङ्ग अंग से परे सर्वनामस्थान हो तो नुम् का आगम हो । यह आगम नपुंसकलिङ्ग अंग को होता है ।

नुम् को कहाँ रखा जाय इसके लिए सूत्र है—

२४०. मिदचोऽन्त्यात् परः ॥११॥११॥४६

अचां मध्ये योऽन्त्यः तस्मात्परस्यैवान्तावयवो मित् स्यात् ।

उपधादीर्घः—ज्ञानानि । पुनस्तद्वत् । शेषं पुंवत् ।

किसी समुदाय में आये हुए अचों में से जो अन्तिम अच् हो उसके बाद ही मित् (म् की इत्संज्ञा वाला) आगम रखा जाता है और वह उसका अन्तिम अवयव होता है। यहाँ 'ज्ञान इ' में न का अ अन्तिम अच् है उससे परे नुम् आगम हुआ—ज्ञाननुम् इ। नुम् में म् और उ का लोप होने पर—ज्ञानन् इ।

अब ज्ञानन् नकारान्त अङ्ग से परे 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से नकारान्त अंग की उपधा (अन्तिम से ठीक पहले के वर्ण) को दीर्घ हो जाएगा—ज्ञानान् इ=ज्ञानानि।

(यहाँ ध्यान देने योग्य है कि ज्ञान के नपुंसकलिङ्ग होने पर भी 'शि सर्वनामस्थानम्' से सर्वनामस्थान संज्ञा हो जाती है और इसी कारण 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' लागू हो पाता है।)

संबोधन में—हे ज्ञान+सु। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से उ की इत्संज्ञा, 'तस्यलोपः' से लोप होने पर — हे ज्ञान स्। 'यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्' से हे ज्ञान की अंग संज्ञा होगी। 'एङ्हस्वात्सम्बुद्धेः' से ह्रस्वान्त अंग से परे सम्बुद्धि के स् का लोप होकर — हे ज्ञान। संबोधन के द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा द्विवचन एवं बहुवचन के समान ही — हे ज्ञाने, हे ज्ञानानि।

द्वितीया एकवचन में ज्ञान+अम् होने पर 'अतोऽम्' से अम् को अम् ही आदेश होगा— ज्ञान अम्। चूँकि यह अम् आदेश किया हुआ अम् है अतः इसका 'स्वमोर्नपुंसकात्' (नपुंसकलिङ्ग से परे सु और अम् का लोप हो) सूत्र से लोप नहीं होता। अब 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप होकर—ज्ञानम्।

द्वितीया द्विवचन में प्रथमा द्विवचन के समान ही—ज्ञान ज्ञान औट्=ज्ञान औ। 'नपुंसकाच्च' से औ को शी—ज्ञान शी। श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा, 'तस्यलोपः' से लोप—ज्ञान ई। 'यच्चि भम्' से ज्ञान की भसंज्ञा होगी। 'यस्पेति च' से ई को लोप प्राप्त हुआ, 'औङः श्यां प्रतिषेधः' वार्तिक से निषेध हो गया और 'आद्गुणः' सूत्र से गुण एकादेश होकर—ज्ञाने। द्वितीया बहुवचन में भी प्रथमा के

समान-ज्ञान ज्ञान ज्ञान शस्=ज्ञान शस्। 'जश्शसोः शि' से शस् को शि आदेश-ज्ञान शि। 'लशक्वतद्धिते' से श् की इत्संज्ञा और लोप-ज्ञान इ। 'शि सर्वनामस्थानम्' सूत्र से शि की सर्वनामस्थान संज्ञा हुई। 'नपुंसकस्य झलच' से नुम् का आगम हुआ, जो 'भिदचोऽन्त्यात्परः' सूत्र से ज्ञान के अन्तिम अच् के बाद होगा-ज्ञान नुम् इ। उ, म् का लोप होने पर - ज्ञानन् इ। 'सर्वनामस्थाने चासन्मुद्धौ' से ज्ञानन् की उपधा (अ) को दीर्घ होगा - ज्ञानान् इ = ज्ञानानि।

टि० अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द के रूप तृतीया से सप्तमी तक अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द के समान ही होते हैं।

'ज्ञान' के रूप 'राम' के समान ही इन विभक्तियों में होंगे। यथा-

तृतीया एकवचन में ज्ञान+टा। 'टाडसिडसाभिनात्स्याः' से टा को इन आदेश-ज्ञान इन। 'आदगुणः' से गुण एकादेश होकर-ज्ञानेन।

तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में-ज्ञान ज्ञान भ्याम् से 'ज्ञानभ्याम्' होने पर 'सुपि च' से ह्रस्व अकारान्त अंग को दीर्घ होकर- ज्ञानाभ्याम्।

तृतीया बहुवचन में ज्ञान+भिस् होने पर 'अतो भिस् ऐस्' से ऐस् आदेश 'अनेकाल्' से सम्पूर्ण के स्थान पर आदेश-ज्ञान+ऐस् 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि एकादेश होने पर - ज्ञानैस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु में उ की 'उपदेशे' से इत्संज्ञा, 'तस्यलोपः' से लोप-ज्ञानैर् 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग-ज्ञानैः।

चतुर्थी एकवचन में ज्ञान+डे। 'डेर्यः' से डे को य आदेश-ज्ञान य। 'स्थानिवदादेशोऽनल्पिधौ' से य आदेश अपने स्थानी डे के समान हुआ अतः 'सुपि च' से अकारान्त अंग को दीर्घ होकर- ज्ञानाय।

चतुर्थी और पञ्चमी बहुवचन में ज्ञान ज्ञान ज्ञान भ्यस् के बाद ज्ञानभ्यम् होने पर 'बहुवचने झल्येत्' से झल्येत् बहुवचन नुम् पञ्चम्य पर होने पर अकारान्त अंग को ए होता है अतः ज्ञान् ए भ्यस्=ज्ञानेभ्यस्। रुत्वं और विसर्ग करने पर ज्ञानेभ्यः।

पञ्चमी एकवचन में 'ज्ञान डसि' होने पर 'टाडसिडसाभिनात्स्याः' से डसि को आत् आदेश हुआ, 'अनेकाल् शित् सर्वस्य' से सम्पूर्ण डसि के स्थान पर आत्-ज्ञानआत्, 'अकः सवर्षेदीर्घः' से दीर्घ-ज्ञानात्।

षष्ठी एकवचन में भी—ज्ञान+ङस् होने पर 'टाङसिङसामिनात्स्याः' से ङस् को स्य—ज्ञानस्य ।

षष्ठी और सप्तमी द्विवचन में—ज्ञान ज्ञान ओस् से ज्ञान ओस् । 'ओसि च' से ओस् परे रहने पर अकारान्त अंग को ए होता है, अतः ज्ञान ए ओस् । 'एचोऽयवायावः' से ए को अय हुआ—ज्ञान् अय ओस्=ज्ञानयोस् । रुत्व और विसर्ग करने पर—ज्ञानयोः ।

षष्ठी बहुवचन में ज्ञान आम् । 'ह्रस्वनद्यापो-नुट्' से आम् को नुट् का आगम, जो टित् होने से 'आद्यन्तौ टकितौ' द्वारा आदि में— ज्ञान नुट् आम् । नुट् में ट् और उ का लोप होकर—ज्ञान नाम् । 'नामि' सूत्र से नाम परे रहने पर ह्रस्व अजन्त अंग को दीर्घ होता है अतः ज्ञान के अ को दीर्घ होकर—ज्ञानानाम् ।

सप्तमी एकवचन में—ज्ञान+ङि । 'लशक्वतद्धिते' से ङ् की इत्संज्ञा और लोप—ज्ञान इ । 'आद्गुणः' से गुण एकादेश होकर—ज्ञाने । सप्तमी बहुवचन में—ज्ञान सुप् । प् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप—ज्ञान सु 'बहुवचने झल्येत्' से झलादि प्रत्यय परे रहते अंग के अन्तिम अ को ए—ज्ञानेसु । 'आदेशप्रत्ययोः' से सु को मूर्धन्य करने पर—ज्ञानेषु ।

इस प्रकार अकारान्त नपुंसकलिङ्ग ज्ञान के निम्नलिखित रूप हुए—

प्रथमा	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
द्वितीया	"	"	"
तृतीया	ज्ञानेन	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानैः
चतुर्थी	ज्ञानाय	"	ज्ञानेभ्यः
पञ्चमी	ज्ञानात्	"	"
षष्ठी	ज्ञानस्य	ज्ञानयोः	ज्ञानानाम्
सप्तमी	ज्ञाने	"	ज्ञानेषु
संबोधन	हे ज्ञान	हे ज्ञाने	हे ज्ञानानि

इकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'वारि'

वारि (वृज् वरणे+इज् प्रत्यय) इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द है। प्रथम एकवचन में वारि+सु। सु में उ की इत्संज्ञा और लोप होने पर—वारिस्। अब स का लोप करने के लिए सूत्र है—

२४४. स्वमोर्नपुंसकात् ॥७॥१॥२३

लुक् स्यात्। वारि।

नपुंसकलिङ्ग से परे सु और अम् का लुक् हो। लुक् कहने से यही तात्पर्य है कि सम्पूर्ण प्रत्यय का लोप हो जाय।

वारि+स् में स का लोप करने पर रूप बनेगा— वारि। प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में वारि+औ तथा वारि+औट=वारि औ होने पर 'नपुंसकाच्च' सूत्र से नपुंसकलिङ्ग से औङ् को शी आदेश होता है अतः— वारि+शी हुआ। श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप करने पर—वारि ई। अब नुम् का आगम करने के लिए सूत्र है—

२४५. इकोऽचि विभक्तौ ॥७॥१॥७३

इगन्तस्य क्लीबस्य नुम् अचि विभक्तौ।

इगन्त (जिसके अन्त में इक् हो उस) नपुंसकलिङ्ग शब्द से जो अजादि विभक्ति आवे तो इगन्त को नुम् का आगम हो।

वारि इगन्त है, उससे परे ई अजादि विभक्ति परे होने पर वारि को नुम् आगम हुआ—वारि नुम् ई। नुम् में म् और उ का लोप होकर—वारि न् ई = वारिनी। 'अट्कुप्वाङनुम्व्यवायेऽपि' से न् को ण् करने पर सिद्ध हुआ—वारिणी।

प्रथमा बहुवचन में वारि जस् तथा द्वितीया बहुवचन में वारि शस् होने पर 'जश्शसोः शि' से जस् और शस् दोनों को शि आदेश हुआ वारिशि। शि के 'शि सर्वनामस्थानम्' से सर्वनामस्थान संज्ञा हुई एवं सर्वनामस्थान परे होने पर

‘नपुंसकस्य झलचः’ से अजन्त वारि को नुम् का आगम हुआ— वारि नुम् शि। ‘शि’ में श की ‘लशक्वतद्धिते’ से इत्संज्ञा और लोप, नुम् में म् और उ का लोप होकर—वारि न् इ। ‘सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ’ से ‘वारिन्’ नान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होगा—वारीन् इ = वारीनि। ‘अट्कुप्वा०’ से न् को ण् करने पर — वारीणि।

सम्बोधन में—हे वारि सु। सु में उ की ‘उपदेशे०’ से इत्संज्ञा और लोप करने पर—हे वारिस्। ‘स्वमोर्नपुंसकात्’ से नपुंसक लिङ्ग से परे सु और अम् का लुक् होता है अतः सु (स) का लुक् प्राप्त हुआ और रूप हुआ—हे वारि। किन्तु इसका विकल्प से दूसरा रूप भी होता है। ‘स्वमोर्नपुंसकात्’ से सु का लोप होने पर भी ‘प्रतः’ यलोपे प्रत्ययलक्षणम्’ सूत्र से प्रत्यय मानकर ‘हे वारि स्’ में ‘ह्रस्वस्य गुणः’ से वारि के ह्रस्व इ को गुण ए आदेश होगा— हे वारे स्। यद्यपि ‘ह्रस्वस्य गुणः’ का ‘न लुमताङ्गस्य’ (लुक् श्लु, लुप् शब्दों से यदि प्रत्यय का लोप हुआ हो तो उसके बाद अंग को उस प्रत्यय के परे रहने पर होने वाला कार्य नहीं होता) सूत्र से निषेध होता है, तथापि ‘न लुमताङ्गस्य’ का निषेध नित्य निषेध नहीं माना जाता, इस कारण ‘ह्रस्वस्य गुणः’ से गुण होगा — हे वारे।

संबोधन के द्विवचन में प्रथमा द्विवचन के समान ही — हे वारि औ। ‘नपुंसकाच्च’ सूत्र से औङ् को शी, शी में श की इत्संज्ञा और लोप—हे वारि ई। ‘इकोऽचि विभक्तौ’ से नुम् का आगम, नुम् में म् और उ का लोप करने पर — हे वारिन् ई = हे वारिनी, न को ण् करने पर—हे वारिणी।

संबोधन बहुवचन में भी प्रथमा बहुवचन के समान—हे वारि जस्। ‘जश्शसोः शि’ से जस् को शि आदेश, ‘लशक्वतद्धिते’ से शि में श की इत्संज्ञा और लोप—हे वारि इ। ‘शि सर्वनामस्थानम्’ से सर्वनामस्थान संज्ञा, ‘नपुंसकस्य झलचः’ से वारि को नुम् आगम हुआ, नुम् में म् और उ का लोप होने पर न् बचा — हे वारि न् इ, ‘सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ’ से वारिन् नकारान्त की उपधा को दीर्घ हुआ — हे वारीनि, न् को ण् करने पर — हे वारीणि।

द्वितीया एकवचन में वारि अम् होने पर ‘स्वमोर्नपुंसकात्’ से लुक् होने के कारण सम्पूर्ण अम् प्रत्यय का लोप होकर ‘वारि’ सिद्ध हुआ।

तृतीया एकवचन में—वारि+टा। 'चुटू' से ट की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' लोप—वारि आ। 'इकोऽचि विभक्तौ' (७.१.७३) से अंग को नुम् का आगम प्राप्त हुआ। 'आडोनाऽस्त्रियाम्' (७.३.१२०) से आ को ना आदेश प्राप्त हुआ। 'विप्रतिषेधेः कार्यम्' सूत्र से पर सूत्र 'आडो नाऽस्त्रियाम्' का कार्य होगा और वारिआ में आ को ना आदेश होगा — वारिना। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से न को ण करने पर — वारिणा।

तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी के द्विवचन में सीधे सीधे वारिभ्याम्। तृतीया बहुवचन में भी — वारिभिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु, रु में उ की इत्संज्ञा और लोप, 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—वारिभ्यः।

चतुर्थी एकवचन में—वारि+डे। 'लशक्वतद्धिते' से ड की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप—वारि ए। 'इकोऽचि विभक्तौ' (७.१.७३) से अङ्ग को नुम् का आगम प्राप्त हुआ, किन्तु 'वारि' की 'शेषो घ्यसखि' से घिसंज्ञा होने के कारण 'घेर्ङिति' (७.१३.१११) से घिसंज्ञक को गुण आदेश भी प्राप्त हुआ, किन्तु यहाँ नुम् ही होगा जिसके लिए वार्तिक है—

वार्तिक (२४) वृद्ध्यौत्वतृज्वदभावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन

वृद्धि, औत्व, तृज्वदभाव और गुण के साथ विप्रतिषेध (तुल्यबलविरोध) होने पर पूर्व होने पर भी नुम् ही होते।

नुम् अङ्ग के अन्तिम अच् वारि के इ से पर आगम होगा — वारि ए। नुम् में म् और उ का लोप — वारिने। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से न को ण करने पर — वारिणे।

चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में वारिभ्यस होने पर रुत्व और द्विवचन करने पर — वारिभ्यः।

पञ्चमी एकवचन में वारि+ङसि और षष्ठी एकवचन में वारि+ङस्। पर, ङसि में इ तथा ङ का लोप एवं ङस् में ङ का लोप करने पर — वारि+ङस्। 'घेर्ङिति' से वारि के इ को गुण आदेश प्राप्त हुआ, 'इकोऽचि विभक्तौ' से अंग

नुम् आगम प्राप्त हुआ, विप्रतिषेध होने पर भी 'वृद्ध्यौत्वतृज्वदभावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन' वार्तिक के अनुसार नुम् आगम हुआ—वारि नुम् अस्। नुम् में म् और उ का लोप होने पर — वारिनस्। 'अट्कुप्वाङ्' से न् को ण् हुआ—वारिणस्। स् को रुत्व और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर — वारिणः।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में भी वारि+ओस् होने पर 'इको यणचि' (६।१।७७) से इ को य् प्राप्त हुआ, 'इकोऽचि विभक्तौ' (७।१।७३) से नुम् आगम भी प्राप्त हुआ। पर होने के कारण नुम् आगम ही होगा — वारिनुम् ओस्। नुम् में म् और उ का लोप होने पर—वारिनोस्। न् को ण् तथा स् को 'ससजुषोः रुः' से रु, रु में उ की इत्संज्ञा और लोप के बाद 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—वारिणोः।

षष्ठी बहुवचन में वारिआम् होने पर 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से आम् को नुट् का आगम प्राप्त हुआ, और 'इकोऽचि विभक्तौ' से वारि अंग को नुम् का आगम प्राप्त हुआ। इस विप्रतिषेध में वार्तिक है—'नुमचिरतृज्वदभावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन' नुम्, अच् परे होने पर रेफ का आदेश और तृज्वदभाव के साथ नुट् का विप्रतिषेध होने पर नुट् ही होता है।

अतः 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से आम् को नुट् आगम हुआ जो टित् होने से आदि में होगा—वारिनुट् आम्। नुट् में ट् और उ की इत्संज्ञा एवं लोप—वारिनाम्। 'नामि' सूत्र से वारि के इ को दीर्घ होगा—वारीनाम्। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से न् को ण् — वारीणाम्।

सप्तमी एकवचन में—वारि+ङि। 'लशक्वतद्धिते' से ङ् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप — वारि इ। वारि की घिसंज्ञा होने के कारण 'अच्च घेः' से ङि को औ प्राप्त हुआ और 'इकोऽचि विभक्तौ' से अंग वारि को नुम् आगम प्राप्त हुआ। इस विप्रतिषेध में 'वृद्ध्यौत्वतृज्वदभावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन' वार्तिक के अनुसार नुम् ही होगा— वारि नुम् इ। नुम् में म् और उ का लोप — वारिनि।

'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से न को ण् करने पर— वारिणि ।

सप्तमी बहुवचन में—वारिसुप् । प् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप—वारिसु । 'आदेशप्रत्ययोः' से मूर्धन्य करने पर— वारिषु ।

इस प्रकार इकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'वारि' शब्द के निम्नलिखित रूप हुए—

प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वितीया	"	"	"
तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
चतुर्थी	वारिणे	"	वारिभ्यः
पञ्चमी	वारिणः	"	"
षष्ठी	"	वारिणोः	वारीणाम्
सप्तमी	वारिणि	"	वारिषु
संबोधन	हे वारि, हे वारे	हे वारिणी	हे वारीणि

इकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'दधि'

नपुंसकलिङ्ग इकारान्त दधि शब्द के रूप नपुंसकलिङ्ग इकारान्त 'वारि' से निम्नलिखित आठ विभक्तियों में भिन्न होते हैं— तृतीया एकवचन (टा-ए), चतुर्थी एकवचन (डे-ए), पंचमी एकवचन (डसि-अस), षष्ठी एकवचन (डस्-अस), षष्ठी और सप्तमी द्विवचन (ओस्), षष्ठी बहुवचन (आम्) एव सप्तमी एकवचन (डि-इ) अर्थात् तृतीया से सप्तमी तक अजादि आठ विभक्तियों के परे रहते वारि से भिन्न रूप होते हैं । प्रथमा द्वितीया एवं संबोधन के रूप वारि के समान सिद्ध होते हैं ।

प्रथमा एकवचन में—दधि सु होने पर सु में उ की 'उपदेशेऽ' से इत्संज्ञा और लोप होकर — दधि स् । 'स्वमोर्नपुंसकात्' से सु का लोप होकर — दधि ।

प्रथमा के द्विवचन में दधि+औ तथा द्वितीया के द्विवचन में दधि+औ से ट् की इत्संज्ञा और लोप के बाद वारि+औ होने पर 'नपुंसकाच्च' सूत्र से औ

को शी आदेश हुआ—दधि शी। शी में श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप करने पर दधि ई। 'इकोऽचि विभक्तौ' से दधि को नुम् का आगम होने पर—दधि नुम् ई। नुम् में म् और उ का लोप करने पर—दधिनी।

प्रथमा बहुवचन में दधि+जस् होने पर और द्वितीया बहुवचन में दधि+शस् होने पर 'जश्शसोः शि' से शि आदेश सम्पूर्ण जस् और शस् के स्थान पर होगा — दधि शि। 'शि' में श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप करने पर — दधि इ। 'शि सर्वनामस्थानम्' से सर्वनामस्थान होने से 'नपुंसकस्य झलचः' से नुम् का आगम हुआ — दधि नुम् इ। नुम् में म् और उ का लोप होने पर — दधिन् इ। 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से दधिन् नान्त होने से उपधा इ को दीर्घ होकर—दधीनि।

संबोधन में—हे दधि सु। 'स्वमोर्नपुंसकात्' से सु का लोप करने पर एक रूप बनेगा—हे दधि। 'स्वमोर्नपुंसकात्' से सु का लोप होने पर भी 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' सूत्र से सु को मानकर 'ह्रस्वस्य गुणः' से दधि के इ को गुणसंज्ञक स्वर 'ए' आदेश होगा—हे दधे !

संबोधन द्विवचन में 'हे दधिनी', बहुवचन में 'हे दधीनि' प्रथमा के समान ही सिद्ध होंगे।

द्वितीया एकवचन में दधि+अम् होने पर 'स्वमोर्नपुंसकात्' से अम् का लुक् होकर—दधि।

तृतीया एकवचन में—दधि+टा। 'चुटू' से ट् की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप होने पर—दधि आ। 'आडो नाऽस्त्रियाम्' से घिसंज्ञक से परे टा के आ को ना प्राप्त होता है, तब अग्रिम सूत्र द्वारा आ को ना आदेश न कर दधि के इ को अनङ् आदेश के लिए सूत्र है—

२४६. अस्थि—दधि—सक्थ्यक्ष्णामनङ्मुदात्तः । ७ । ११ । ७५

एषामनङ् स्याट् टादावचि।

अस्थि, दधि, सक्थि और अक्षि शब्दों से परे टा आदि अजादि विभक्तियाँ (टा, डे, डसि, डस्, ओस, आम्, डि, ओस) हों तो अस्थि आदि शब्दों को अनङ् आदेश होता है।

अनङ् डित् है अतः 'डिच्च' सूत्र से अन्तिम वर्ण के स्थान पर आदेश होगा। 'दधि आ' की स्थिति में इ को अनङ् हुआ— दध् अनङ् आ। अनङ् में इ की इत्संज्ञा और लोप, उच्चारणार्थ न के अ का लोप होने पर दध् अन् आ = दधन् आ। अब दधन् में अन् के अ का लोप करने के लिए सूत्र है—

२४७. अल्लोपोऽनः । ६ । ४ । १३४

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थान — यजादि—स्वादि—परो योऽन् तस्याकारस्य लोपः ।

यदि अंग से परे सर्वनामस्थान से भिन्न यकारादि (=य् से आरम्भ) या अजादि विभक्ति प्रत्यय हो तो अंग के अवयव के रूप में आये हुए अन् के अ का लोप होता है।

'दधन् आ' में सर्वनामस्थान से भिन्न अजादि प्रत्यय परे है, अतः दधन् में अन् के अ का लोप होगा — दधन् आ=दध्ना।

तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी के द्विवचन में सीधे—सीधे—दधिभ्यस्। तृतीया बहुवचन में भी—दधिभिस्। स् को रुत्व और विसर्ग करने पर—दधिभिः।

चतुर्थी एकवचन में—दधि+ङे। 'लशक्वतद्धिते' से ङ् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप करने पर—दधि ए। 'अस्थिदधि—सक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः' से दधि को अनङ् आदेश, जो डित् होने से दधि के इ के स्थान पर होगा — दध् अनङ् ए। ङ् की इत्संज्ञा, लोप होने तथा न् के परवर्ती उच्चारणार्थ अ का लोप होने पर — दध् अन् ए = दधन् ए। 'अल्लोपोऽनः' से अन् के अ का लोप होने पर दध्ने।

चतुर्थी और पञ्चमी बहुवचन में सीधे—सीधे—दधिभ्यस्। स् को रुत्व और विसर्ग करने पर—दधिभ्यः।

पञ्चमी के एकवचन में दधि+ङसि से 'इ' का और ङ् का लोप होने पर— दधि अस् हुआ। 'अस्थि—दधि—सक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः' से दधि को अनङ् आदेश, जो इ के स्थान पर होगा— दध् अनङ्+अस्। अनङ् में से ङ् तथा नका

से परे अ के लोप होने पर— दध् अन् अस् = दधन् अस् । 'अल्लोपोऽनः' से अन् के अ का लोप होकर—दध् अस् । स् को रु, रु को ए, ए को विसर्ग करने पर — दध् नः ।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में—दधि+ओस् होने पर 'अस्थि दधिसक्थ्यक्ष्णामनङ्मुदात्तः' से दधि को अनङ् आदेश, जो अन्तिम इ को हुआ— दध् अनङ् ओस् । अनङ् में अन् बचा । दध् अन् ओस् = दधन् ओस् । 'अल्लोपोऽनः' से अन् के अ का लोप — दध् ओस् । स् को रुत्व एवं विसर्ग करने पर — दध् नोः ।

षष्ठी बहुवचन में—दधि आम् । 'अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङ्मुदात्तः' से दधि को अनङ् जो अन्तिम इ के स्थान पर हुआ — दध् अनङ् आम् । अनङ् में अन् बचा — दध् अन् आम् = दधन् आम् । 'अल्लोपोऽनः' से अन् के अ का लोप होकर— दध् नाम् ।

सप्तमी एकवचन में दधि+ङि । 'लशक्वतद्धिते' से ङ की इत्संज्ञा और लोप होकर—दधि इ । 'अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङ्मुदात्तः' से दधि को अनङ् आदेश, जो अन्तिम इ को हुआ — दध् अनङ् इ । अनङ् में अन् बचा — दध् अन् इ = दधन् इ । अब 'अल्लोपोऽनः' से अन् के अ का लोप प्राप्त हुआ, किन्तु विकल्प का सूत्र है—

२४८. विभाषा डिश्योः । ६ । ४ । १३६ ।

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थान—यजादि—स्वादिपरो योऽन्
तस्याकारस्य लोपो वा स्याद् डिश्योः परयोः ।

यदि सर्वनामस्थान से भिन्न यकारादि या अजादि सु आदि प्रत्ययों में से डि और शी परे हो तो अङ्ग के अवयव अन् के अ का विकल्प से लोप होता है ।

अतः दधन् इ में अन् के अ का लोप करने पर दध्नि ।

अन् के अ का लोप न करने पर — दध्नि ।

सप्तमी बहुवचन में—दधि सुप् । प की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप—दधिसु । 'आदेशप्रत्ययोः' से सु को मूर्धन्य करने पर—दधिषु ।

इस प्रकार इकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'दधि' शब्द के निम्नलिखित रूप हुए-

प्रथमा	दधि	दधिनी	दधीनि
द्वितीया	"	"	"
तृतीया	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
चतुर्थी	दध्ने	"	दधिभ्यः
पञ्चमी	दध्नः	"	"
षष्ठी	"	दध्नोः	दध्नाम्
सप्तमी	दध्नि, दधनि	"	दधिषु
संबोधन	हे दधे, हे दधि	हे दधिनी	हे दधीनि

हलन्तपुल्लिङ्ग-प्रकरणम्

इस प्रकरण में हल् (=व्यंजन) से अन्त होने वाले पुल्लिङ्ग शब्दों की रूपसिद्धि के नियम दिये गये हैं।

लिह की रूपसिद्धि

लिह शब्द का अर्थ है चाटनेवाला। यह लिह (आस्वादन करण, चाटना) धातु से क्विप् प्रत्यय लगाकर बना है और हकारान्त पुल्लिङ्ग है। कृत् प्रत्यय लगाकर बना हुआ लिह शब्द कृदन्त है। इसकी 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा हुई। तब प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सु प्रत्यय प्राप्त हुआ—लिह+सु।

उ की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप करने पर—लिह स्। 'हलङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' (सूत्र १७६, हलन्त से परे अथवा जिसके अन्त में दीर्घ ङ या आप् हो उससे परे सु ति सि प्रत्ययों के अपृक्त हल् का लोप हो) से 'लिहस्' में स् का लोप हो गया। किन्तु 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' (सूत्र १६० प्रत्यय का लोप होने पर भी प्रत्यय पर आश्रित कार्य होते हैं) से सुप् प्रत्यय के स् का लोप होने पर जो 'लिह' बच गया उसे सुबन्त मानकर पदसंज्ञा होगी।

तब लिह के ह को ढ आदेश करने के लिये सूत्र है—

२५१. हो ढः। ८। २। ३१।

हस्य ढः स्याज्झलि पदान्ते च। लिट्, लिङ्। लिहौ, लिहः।
लिङ्भ्याम्। लिट्त्सु, लिट्सु।

यदि पद के अन्त में ह हो और उससे परे झल् प्रत्याहार का वर्ण परे हो तो पदान्त ह के स्थान पर ढ हो जाता है।

(सूत्र का अर्थ है—हः=ह+षष्ठी) ह के स्थान पर। ढः (प्रथमा) ढ आदेश हो। 'झलो झलि' सूत्र से झलि लेकर और 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च'

से 'अन्ते' लेकर सूत्र का पूरा अर्थ निकलेगा।)

इस प्रकार 'हो ढ' सूत्र से लिह के पदान्त ह को ढ आदेश हुआ—लिह। 'झलां जशोऽन्ते' से पद के अन्त में झल् वर्ण ढ को जश् अर्थात् तृतीय वर्ण ङ आदेश हुआ—लिङ्। 'वावसाने' (सूत्र १४६) से विकल्प सं द भी होगा। इस प्रकार दो रूप हुए — लिट्, लिङ्।

प्रथमा द्विवचन में लिह लिह औ। 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' से एक लिह शेष बचकर—लिह औ = लिहौ।

प्रथमा बहुवचन में लिह लिह लिह जस् से 'लिह जस्' होने पर 'चुट्' से जस् के आदि में आये ज् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप करने पर—लिह अस्=लिहस्। 'ससजुषोः रु' से स् को रु। रु में उ की इत्संज्ञा और लोप करने पर—लिहर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग करने पर — लिहः।

द्वितीया एकवचन में लिह+अम्=लिहम्। द्विवचन में लिह लिह औट्। एक लिह शेष बचने और 'ट्' की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप करने पर—लिह औ=लिहौ। द्वितीया बहुवचन में लिह लिह लिह शस्। एक लिह शेष बचने और 'लशक्वतद्धिते' से शस् के श् की इत्संज्ञा तथा लोप करने पर लिह+अस्=लिहस्। 'ससजुषोः रु' से स् को रु। रु में उ की इत्संज्ञा और लोप। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग करने पर—लिहः।

तृतीया एकवचन में—लिह+टा। 'चुट्' से टा में ट् की इत्संज्ञा तथा लोप होने पर—लिह+आ=लिहा। तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में लिह लिहभ्याम्। एक लिह शेष बचने पर—लिहभ्याम्।

अब लिह को पदसंज्ञा करने के लिये सूत्र है—

(सूत्र १६४— 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'। १। ४। १७।

कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्व पदं स्यात्।

यदि सर्वनामस्थान संज्ञा वाले (सु औ जस् अम् औट्) प्रत्ययों को छोड़कर सुप् प्रत्ययों से लेकर कप् प्रत्यय तक के प्रत्यय परे हों तो उनके पूर्व आये हुए शब्दस्वरूप को पद संज्ञा होती है।) 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' सूत्र से

लिह से परे भ्याम् होने पर लिह की पद संज्ञा हुई। तदनन्तर 'हो ढः' सूत्र से पदान्त ह को ढ हो गया—लिढ्भ्याम्। 'झलांजशोऽन्ते' से पद के अन्त में ढ को ङ हुआ—लिङ्भ्याम्। चूँकि अवसान परे न ही है अतः ङ को विकल्प से ट नहीं होगा। सिद्ध हुआ—लिङ्भ्याम्।

तृतीया बहुवचन में—लिह लिह लिह भिस्। एक लिह शेष बचकर—लिहभिस्। 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' से लिह को पदसंज्ञा हुई, पदान्त ह को 'हो ढः' से ढ आदेश—लिढ्भिस्। 'झलांजशोऽन्ते' से ढ को ङ होकर लिङ्भिः।

चतुर्थी एकवचन में—लिह+ङे। 'लशक्वतद्धिते' से ङ की इत्संज्ञा। ङ का लोप होकर—लिह ए=लिहे। चतुर्थी और पंचमी के बहुवचन में लिह लिह लिह भ्यस्। एक लिह शेष बचकर—लिहभ्यस्। लिह की 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' से पदसंज्ञा। 'हो ढः' से पदान्त ह को ढ आदेश हुआ—लिढ्भ्यस्। 'झलांजशोऽन्ते' से ढ को ङ—लिङ्भ्यम्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र। र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग होकर—लिङ्भ्यः।

पंचमी एकवचन में लिह+ङ्सि, तथा षष्ठी एकवचन में लिह+ङस् होने पर 'लशक्वतद्धिते' से ङ की इत्संज्ञा और लोप होने पर तथा ङ्सि में इ की 'उपदेशेऽजनुनासिक' से इत्संज्ञा और लोप होने पर दोनों ही स्थलों पर—लिह+अस् लिहस्। स् को 'ससजुषोः रुः' से रु। रु को र। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र को विसर्ग करने पर—लिहः।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में—लिह+ओस्=लिहोस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को पुनः र। र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयम्' से विसर्ग करने पर—लिहोः।

षष्ठी बहुवचन में—लिह लिह लिह आम्। एक लिह शेष बचकर—लिह+आम्=लिहाम्।

सप्तमी एकवचन में—लिह+ङि। ङ की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप—लिह+इ=लिहि।

सप्तमी बहुवचन में—लिह लिह लिह सुप्। एक लिह शेष बचकर—लिह

सुप्। प की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप-लिह सु। 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' से लिह की पदसंज्ञा 'हो ढः' से ह को ढ आदेश-लिह सु। 'झलां जशोऽन्ते' से ढ को ङ-लिङ सु। 'डः सि धुट्' से सु को धुट् आगम-लिङ् धुट् सु। धुट् में उ और ट का लोप होने पर-लिङ् ध सु। धुट् आगम विकल्प से होता है, धुट् आगम न करने पर लिङ् सु ही रहा। दो रूप हो गये-(१) लिङ् ध सु (२) लिङ् सु। पहले रूप में ड के योग में ध को 'ष्टुना ष्टुः' से टवर्ग का चौथा वर्ण ढ आदेश होना चाहिये तथा इसी प्रकार दूसरे रूप 'लिङ् सु' में टवर्ग के योग में सु को षु होना चाहिये किन्तु 'न पदान्तादोरनाम्' निषेध कर देता है। तब 'खरि च' सूत्र प्राप्त होगा और पहले रूप लिङ् ध सु में पहले खर् 'स' पर रहते ध को त् होगा-लिङ् त् सु। पुनः त् हो गया, उसके पर रहते ङ को ट होकर-लिट्त्सु। दूसरे रूप में खट् वर्ण स् पर रहते ङ को ट-लिट्सु।

संबोधन में प्रथमा के ही समान रूप होंगे-हे लिट्, हे लिङ्। हे लिहौ। हे लिहः।

इस प्रकार हकारान्त पुल्लिङ्ग लिह शब्द के रूप हुए:-

प्रथमा	लिट्, लिङ्	लिहौ	लिहः
द्वितीया	लिहम्	"	"
तृतीया	लिहा	लिङ्भ्याम्	लिङ्भिः
चतुर्थी	लिहे	"	लिङ्भ्यः
पंचमी	लिहः	"	"
षष्ठी "	"	लिहोः	लिहाम्
सप्तमी	लिहि	"	लिट्त्सु, लिट्सु
संबोधन	हे लिट्, हे लिङ्	हे लिहौ	हे लिहः

मकारान्त सर्वनाम 'इदम्' (पुल्लिङ्ग) के रूप

इदम् (=यह) शब्द मकारान्त है। यह सर्वनाम शब्द है। इसके रूप तीनों लिङ्गों में होते हैं। यहाँ पुल्लिङ्ग के रूपों की सिद्धि दी जा रही है।

प्रथमा एकवचन में इदम्+सु आने पर सु में उ की इत्संज्ञा और लोप होकर-इदम् स्।

इस प्रसंग में पहले 'त्यदादीनामः' ७।२।१०२ सूत्र प्राप्त होता है जिसके अनुसार त्यद् आदि आठ शब्दों (त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि) से परे विभक्ति प्रत्यय आने पर इनके अन्तिम अल् को अ आदेश होता है। किन्तु इस सूत्र का निषेध होकर 'सु' पर रहते इदम् के म् को अ न होकर आगे आने वाले सूत्र से म् ही रहेगा-

२७२. इदमो मः। ७।२।१०८

इदमो मस्य मः स्यात् सौ परे। त्यदाद्यत्वापवादः।

इदम् से परे सु विभक्तिप्रत्यय आवे तो इदम् के म् को म् ही रहे। यह सूत्र त्यद् आदि (आठ शब्दों) के स्थान पर होने वाले अ का अपवाद है।

अब इदम् में इद् को अय् आदेश करने के लिये सूत्र है-

२७३. इदोऽय् पुंसि। ७।२।१११

इदम् इदोऽय् स्यात्सौ पुंसि। सोर्लोपः। अयम्। त्यदाद्यत्वे पुल्लिङ्ग में यदि इदम् से परे सु हो तो इदम् के इद् के स्थान पर अय् आदेश हो।

इदः=(इद्+षष्ठी)=इद् के स्थान पर। अयं (प्रथमा)=अय् आदेश हो। पुंसि=पुल्लिङ्ग में। 'इदमो मः' सूत्र से इदम्=इदम् के। 'यः सौ' सूत्र से 'सौ'=सु के परे रहने पर लेकर सूत्र का अर्थ किया जाता है।

अब इदम्+स् में इदम् में इद् को अय् हुआ-अय् अ म्+स्। 'हलङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से अपृक्त स् का लोप होकर-अयम्।

प्रथमा द्विवचन में इदम्+औ होने पर 'इदमो मः' तो प्राप्त होगा नहीं, क्योंकि वह सु विभक्ति परे होने पर ही प्राप्त होता है। अतः 'त्यदादीनामः' सूत्र

से इदम् के अन्तिम् म् को अ होगा—इद अ+औ।

अब इद के अ और उसके बाद आये अ दोनों को पररूप एकादेश करने के लिये सूत्र है—

२७४. अतो गुणे । ६ । १ । ६५

अपदान्तादतो गुणे पररूपमेकादेशः ।

अपदान्त अत् (=ह्रस्व अ) के बाद गुणसंज्ञक स्वर आवे तो पूर्व और पर के स्थान पर पररूप एकादेश होता है ।

(सूत्र में अतः=अत् के बाद, गुणे=गुण संज्ञक स्वर परे रहने पर इतना ही कहा गया है। 'उस्यपदान्तात्' सूत्र से 'अपदान्तात्' और 'एङिपररूपम्' से 'पररूपम्' लेकर पूरा अर्थ निकलता है ।)

इद अ+औ में द का अ पदान्त नहीं है । उस अपदान्त अ के बाद आया हुआ अ गुणसंज्ञक स्वर है । दोनों के स्थान पर पररूप अ होकर—इद+औ ।

अब द को म् करने के लिये सूत्र है—

२७५. दश्च । ७ । २ । १०६

इदमो दस्य मः स्याद्विभक्तौ । इमौ, इमे । त्यदादेः संबोधनं नास्तीत्युत्सर्गः ।

इदम् के द को म् आदेश हो यदि विभक्तिप्रत्यय परे हो ।

(यहाँ 'इदमो मः' से इदमः और मः, तथा 'अष्टन आ विभक्तौ' से 'विभक्तौ' लेकर सूत्र का अर्थ किया जायगा ।)

अब इद+औ में द को म् होकर—इम+औ ।

'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्णदीर्घ प्राप्त हुआ, 'नादिचि' से निषेध हो गया, अतः 'वृद्धिरेचि' से अ+औ=औ=इमौ ।

प्रथमा बहुवचन में इदम्+जस् होने पर जस् में ज् की 'चुटू' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप होकर इदम्+अस् हुआ ।

‘त्यदादीनामः’ से इदम् के म् को अ होगा—इद अ अस्। ‘अतो गुणे’ से इद के अ को गुण स्वर अ परे रहते पररूप एकादेश अ हुआ—इद अस्। ‘दश्च’ सूत्र से इद के द् को म् आदेश हुआ—इम अस्। इदम् को सर्वनामसंज्ञा होती है अतः इदम् के स्थान पर हुए इम को भी सर्वनाम संज्ञा होगी। सर्वनाम संज्ञा होने पर ‘जसः शी’ सूत्र से जस् विभक्ति के स्थान पर शी होगा। यहाँ अस् को शी हुआ—इम शी। शी में श् की ‘लशक्वतद्धिते’ से इत्संज्ञा और लोप होकर—इम ई। ‘आद्गुणः’ से गुण एकादेश करने पर—इमे।

इदम् का सामान्यतः संबोधन नहीं होता है।

द्वितीया एकवचन में इदम्+अम् होने पर ‘त्यदादीनामः’ से इदम् के म् को अ आदेश होकर इद.अ अम्। ‘अतो गुणे’ से इद के अ और उससे परे आये अ के स्थान पर पररूप एकादेश—इद+अम्। ‘दश्च’ से इद के द् को म्—इम+अम्। ‘अमि पूर्वः’ से इम के अ और अम् के अ दोनों के स्थान पर पूर्वरूप अ आदेश होकर—इमम्।

द्वितीया द्विवचन में प्रथमा द्विवचन के समान—इदम्+औट्= इदम्+औ। ‘त्यदादीनामः’—इद अ+औ। ‘अतो गुणे’—इद+औ। ‘दश्च’—इम+औ। ‘प्रथमयोः पूर्वसवर्णः; नादिचि, वृद्धिरेचि—इमौ।

द्वितीया बहुवचन में इदम्+शस्। ‘लशक्वतद्धिते’ से श् की इत्संज्ञा और लोप—इदम्+अस्। ‘त्यदादीनामः’ से इदम् के म् को अ—इदअ अस्। ‘अतो गुणे’ से पररूप इद के अ तथा उसके परे आये अ के स्थान पर अ=इद+अस्। ‘दश्च’ से द् को म् आदेश हुआ—इम+अस्। ‘प्रथमयोः पूर्वसवर्णः’ से इम के अ और अस् के अ को दीर्घ एकादेश हुआ—इमास् ‘तस्माच्छसोः न पुंसि’ से स् को न् होकर—इमान्।

तृतीया एकवचन में इदम्+टा होने पर ‘चुटू’ से ट् की इत्संज्ञा, ‘तस्य लोपः’ से लोप—इदम् आ। ‘त्यदादीनामः’ से म् को अ—इदअ+आ। ‘अतो गुणे’ से अ+अ=अ पररूप एकादेश होकर इद+आ।

अब इद में इद को अन् आदेश करने के लिये सूत्र है—

२७६. अनाप्यकः ७। २। ११२।

अककारस्येदम् इदोऽन् आपि विभक्तौ। आब् इति प्रत्याहारः
अनेन।

यदि इदम् शब्द ककाररहित हो और उससे परे तृतीया आदि सप्तम तक के विभक्ति प्रत्यय आवें तो इदम् के इद के स्थान पर अन् आदेश हो। (इस सूत्र में तीन पद हैं। अन्=अन् आदेश हो। आपि=आप्+सप्तमी आप् प्रत्याहार के विभक्ति प्रत्यय पर होने पर आ (टा) से लेकर सप्तमी बहुवचन के सुप् कृष्ण् लृप् लेकर प्रत्याहार बना—आप् अर्थात् तृतीया से सप्तमी तक के विभक्ति प्रत्यय पर होने पर। अकः=नञ्+क=नहीं है क् जिसमें ऐसे। इदम्=इदम् के रूप के इदः=इद के स्थान पर। 'इदोऽन् पुंसि' सूत्र से)

इद+आ में इद इदम् का ककाररहित रूप है। अनेकाल् होने से इद के स्थान पर अन् हुआ—अन् अ+आ। अब 'टाडसिडसामिनात्स्याः' से टा (आ) के स्थान पर इन आदेश हुआ—अन् अ+इन=अन+इन। 'आद्गुणः' से गुण एकादेश होकर—अनेन।

तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में इदम्+भ्याम् होने पर 'त्यदादीनाम्' से म् को अ—इद अ+भ्याम्। 'अतो गुणे' से पररूप अ+अ=अ=इद+भ्याम्। 'अनाप्यकः' सूत्र से इद में इद को अन् प्राप्त हुआ किन्तु इद के लोप ही क देने के लिये सूत्र है—

२७७. हलि लोपः। ७। २। ११३।

अककारस्येदम् इदो लोपः स्यादापि हलादौ।

नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे।

यदि ककाररहित इदम् शब्द से परे तृतीया से लेकर सप्तमी तक के विभक्ति प्रत्ययों में से हलादि विभक्ति प्रत्यय आवे तो इदम् के इद के लोप होता है।

(इस सूत्र में 'अनाप्यकः' से अकः और अपि) 'इदमो मः' से इदमः 'इदोऽयं पुंसि' से इदः और 'अष्टन आ विभक्तौ' से विभक्तौ शब्द लेकर अर्थ किया जाता है।)

यहाँ इदः से षष्ठी है अतः 'अलोऽन्त्यस्य' से इद् के अन्तिम अल् का लोप होना चाहिये, किन्तु इसीको स्पष्ट किया गया है कि जल अनर्थक (= निरर्थक) के विषय में कहा जाय तो वहाँ 'अलोऽन्त्यस्य' सूत्र लागू नहीं होता। इद् अपने आपमें अनर्थक है, क्योंकि वह समुदाय इदम् का एक भाग मात्र है। अतः जब यह कहा गया है इद् का लोप हो तो वहाँ 'अलोऽन्त्यस्य' सूत्र नहीं लागू होता। और केवल अन्तिम अल् द का लोप न होकर सम्पूर्ण इद् का लोप होगा।

इद+भ्याम् में इद् का लोप होने पर—अ+भ्याम्। अब प्रश्न है कि यहाँ 'सुपि च' से अ को दीर्घ करेंगे या नहीं? क्योंकि 'सुपि च' का कहना है कि यत्रादि विभक्ति प्रत्यय परे हो तो अदन्त (अत्+अन्त=जिसके अन्त में ह्रस्व अ हो) अंग को दीर्घ हो। यहाँ तो केवल 'अ' है। अब प्रश्न है कि अ को भी क्या अदन्त (जिसके अन्त में ह्रस्व अ है) माना जा सकता है? तो अगला सूत्र कहता है—हाँ।

२७८. आद्यन्तवदेकस्मिन् । १ । २०

एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमादाविव अन्त इव च स्यात् । सुपि चेति दीर्घः । आभ्याम् ।

एक वर्ण मात्र के विषय में भी जो कार्य होता है वह उसी को आदि जैसे और उसी को अन्त जैसे मानकर होता है।

अतः अ+भ्याम् में भी अ को अदन्त मानकर 'सुपि च' से उसे दीर्घ कर देंगे—आभ्याम्।

तृतीया बहुवचन में इदम्+भिस् होने पर 'त्यदादीनामः' से म को अ—इद अ+भिस्। 'अतो गुणे' से इद् के अन्त में आये अ और उससे परे आये अ के

स्थान पर पररूप 'अ'। इद+भिस्। 'हलि लोपः' से इद में इद का लोप होने पर अ+भिस्। अब 'अ' को 'आद्यन्तवदेकस्मिन्' नियम से अदन्त अंग मानकर 'अभिस्' प्राप्त होगा, किन्तु उसका निषेध करने वाला सूत्र है—

२७६. नेदमदसोरकोः । ७ । ११ ।

अककारयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न । एभिः । अस्मै । एभ्यः । अस्मात् । अस्य । अनयोः, अनयोः । एषाम् । अस्मिन् । एषु ।

ककाररहित इदम् और अदस् शब्द के भिस् को ऐस् आदेश न हो

(सूत्र है—न, इदम्+अदसोः, अकोः । अर्थात् अकोः=ककाररहित (षष्ठि द्विवचन), इदम्+अदसोः=इदम् और अदस् के (षष्ठी द्वि०), न होवे । 'अतो गुणे' ऐस् सूत्र से 'भिस् ऐस्' लेकर अर्थ होगा—भिस् के स्थान पर ऐस् न हो ।)

ऐसी स्थिति में अ+भिस् में 'बहुवचने झल्येत्' से अ को ए होगा—एभिस् को 'ससजुषोः रुः' से रु । रु को र् । र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ज करने पर—एभिः ।

चतुर्थी एकवचन में—इदम्+ङे । 'लशक्वतद्धिते' से ङ् की इत्संज्ञा लोप होने पर—इदम् +ए । 'त्यदादीनामः' से म् को अ—इद अ+ए । 'अतो गुणे' से अ+अ=अ होकर—इद+ए । चूँकि इदम् सर्वनाम है अतः 'सर्वनाम्नः स्मै' से स्मै आदेश होगा, किन्तु 'अनाप्यकः' सूत्र से इद को अन् भी होना चाहिए । ऐसी स्थिति में चूँकि 'सर्वनाम्नः स्मै' सूत्र नित्य नियम वाला है अतः स्मै होगा—इद+स्मै । 'हलि लोपः' से इद में से इद का लोप—अ+स्मै=अस्मै ।

चतुर्थी और पंचमी के बहुवचन में इदम्+भ्यस् । 'त्यदादीनामः' से म् को अ—इद अ+भ्यास् । 'अतो गुणे' से 'त्यदादीनामः' से म् को अ—इद अ+भ्यास् । 'अतो गुणे' से अ+अ को पररूप अ होकर इदभ्यस् । 'हलि लोपः' से इद में इद का लोप—अ+भ्यस् । 'आद्यन्तवेदकस्मिन्' से अ को अदन्त मानकर 'बहुवचने झल्येत्' से अ को ए—एभ्यस् । 'ससजुषोः रुः' से स् को रु । रु को र् । र् को 'खरवसानो' से विसर्ग करने पर एभ्यः ।

पंचमी के एकवचन में इदम्+इसि होने पर। इसि में इ और इ का लोप होकर—इदम्+अस्। 'त्यदादीनामः' से म् को अ—इद अ+अस्। 'अतो गुणे' से इद के अ और उससे परे आये अ के स्थान पर पररूप अ—इद+अस्। 'अनाप्यकः' सूत्र से इद को अन् प्राप्त होगा और 'इसिइयोः स्मात्स्मिन्' भी प्राप्त होगा, तब नित्य कार्य बलवान् होने से स्मात् होगा। 'हलि लोपः' इद में इद का लोप होकर—अस्मात्।

षष्ठी एकवचन में—इदम्+इस्। इ की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप होने पर—इदम् अस्। 'त्यदादीनामः' से म् को अ—इद अ अस्। 'अतो गुणे' से इद के अ और उससे परे आये अ के स्थान पर अ एकादेश होकर—इद अस्। 'टाडसिडसामिनात्स्याः' से अस् को स्य आदेश—इद स्य। 'हलि लोपः' से इद में इद का लोप होकर—अस्य।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में इदम्+ओस्। 'त्यदादीनामः' से म् को अ—इद अ ओस्। 'अतो गुणे' से अ+अ=अ होकर इद ओस्। 'अनाप्यकः' से इद में इद को अन् आदेश होगा—अन् अ ओस्=अन ओस्। 'ओसि च' से अन के अ को ए होगा—अने ओस्। 'एचोऽयवायावः' से ए को अय=अनयोस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—अनयोः।

षष्ठी बहुवचन में इदम्+आम्। 'त्यदादीनामः' से म् को अ होकर—इद अ आम्। 'अतो गुणे' से अ+अ=अ होकर—इद आम्। 'अनाप्यकः' को बाधित कर 'आमि सर्वनामनः सुट्' से सुट् आगम होगा। इद सुट् आम्। उ और ट अनुबन्ध का लोप होने पर—इद स् आम्। 'हलि लोपः' से इद में इद का लोप होकर—अ स आम्। 'बहुवचने झल्येत्' से अ को ए—ए स् आम्। 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को ष करने पर—एषाम्।

सप्तमी एकवचन में इदम्+इ। 'लशक्वतद्धिते' से इ की इत्संज्ञा। लोप करने पर—इदम् इ। 'त्यदादीनामः' से म् को अ होगा—इद अ इ। 'अतो गुणे' से अ+अ=अ होकर—इद इ। नित्य नियम 'इसिइयोः स्मात्स्मिन्' से स्मिन् आदेश होगा—इद स्मिन्। 'हलि लोपः' से इद में इद का लोप होकर—अस्मिन्।

सप्तमी बहुवचन में इदम्+सुप्। प की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप-इदम् सु। 'त्यदादीनामः' से म् को अ-इद अ सु। 'अतो गुणे' से अ+अ=अ होकर-इद सु। 'हलि लोपः' से इद में इद् का लोप हुआ-अ सु। 'बहुवचने झल्येत्' से अ को ए-ए सु। 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को मूर्धन्य करने पर-एषु।

यहाँ उल्लेखनीय है कि इदम् के द्वितीया में अम् और शस् तथा तृतीया एकवचन का टा और षष्ठी एवं सप्तमी के द्विवचन का ओस् विभक्ति परे रहने पर अन्वादेश में अर्थात् जब एक बार एक कार्य को बताने के लिये इदम् का ग्रहण हो चुका है और दूसरी बार कोई दूसरा कार्य उसी व्यक्ति के विषय में बताना हो तो इदम् के स्थान पर एन आदेश होता है। इसके लिये सूत्र है-

२८०. द्वितीयाटौस्वेनः । २ । ४ । ३४

इदमेतदो रन्वादेशे। किञ्चित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः। यथा-अनेन व्याकरणमधीतमेनं छन्दोऽध्यापयेति। अनयोः पवित्रं कुलम् एनयोः प्रभूतं स्वम् इति। एनौ। एनान्। एनेन। एनयोः, एनयोः।

यदि द्वितीया (अम्, औट्, शस्) टा और ओस् विभक्तियाँ परे हो तो अन्वादेश में इदम् और एतद् शब्द के स्थान पर 'एन' आदेश होता है। जब एक बार किसी का एक कार्य के लिये ग्रहण किया गया हो और फिर दुबारा उसका किसी दूसरे कार्य के लिये ग्रहण किया जाय तो अन्वादेश है। अनेन व्याकरणमधीतम्, एनं छन्दोऽध्यापय। (इसने व्याकरण पढ़ लिया, इसे छन्द पढ़ाओ) दुबारा ग्रहण अन्वादेश है। अन्वावेश में 'एनम्' का प्रयोग हुआ। इसी प्रकार 'अनयोः पवित्रं कुलम्' एनयोः प्रभूतं स्वम् (इन दोनों का कुल पवित्र है और इनका धन भी बहुत है।)

अन्वादेश में द्वितीया एकवचन में इदम् + अम् को 'द्वितीयाटौस्वेनः' से एन आदेश-एन + अम् = एनम्। द्वितीया द्विवचन में इदम् + औट् से एन + औ = एनौ। बहुवचन में इदम् + शस् = एन + शस् = एन + अस् = एनास्, 'तस्माच्छसो न पुंसि' से स् को न् = एनान्।

तृतीया एकवचन में— इदम् + टा। इदम् + आ। 'द्वितीयाटौस्वेनः' से इदम् को एन + आ। 'टाडसिड्सामिनात्स्याः' से आ को इन = एन + इन। 'आद्गुणः' से गुण— एनेन।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में— इदम् ओस्। 'द्वितीयाटौस्वेनः' से इदम् को एन = एन ओस्। 'ओसि च' से एन के अ को ए— एने ओस्। 'एचोऽयवायावः' से अय् = एनयोस्। स् को 'ससजुषोः रुः' से रु। रु को र्। र् को विसर्ग करने पर—एनयोः।

पुल्लिङ्ग 'इदम्' शब्द के रूप इस प्रकार हुए—

प्रथमा	अयम्	इमौ	इमे
द्वितीया	इमम्	"	इमान्
तृतीया	अनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	"	एभ्यः
पंचमी	अस्मात्	"	"
षष्ठी	अस्य	अनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	"	एषु

नकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द राजन् के रूप

राजन् शब्द नकारान्त और पुल्लिङ्ग है। (राजृ + कनिन् प्रत्यय)।

प्रथमा एकवचन में राजन् + सु। सु में उ की इत्संज्ञा और लोप होने पर राजन् स होने पर दो सूत्र साथ प्राप्त होंगे (१) 'हलङ्याभ्यो दीर्घात् सु तिस्यपृक्तं हल्' (६। १। ६६) स् का लोप होना चाहिये (२) 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' (६। ४। ८) से राजन् की उपधा अ को दीर्घ होना चाहिये। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' से पर कार्य ही होगा। 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से उपधा को दीर्घ होगा—राजान् स्। 'हलङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से सु के स् का लोप होकर— राजान्। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से अन्तिम न् का लोप होकर सिद्ध होगा— राजा।

प्रथमा द्विवचन में एक राजन् शब्द शेष बचने पर राजन् + औ 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से उपधा को दीर्घ होगा— राजान् + औ = राजानौ। इसी प्रकार द्वितीया द्विवचन में भी राजन् + औट्। ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा 'तस्य लोपः' से लोप— राजन् औ। राजन् की उपधा को 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से दीर्घ होकर—राजानौ।

प्रथमा बहुवचन में राजन् राजन् राजन् + जस्। 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' से एक राजन् शेष बचा— राजन् + जस्। जस् में ज् की 'चुटू' से इत्संज्ञा और लोप— राजन् अस्। 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से राजन् की उपधा को दीर्घ—राजान् अस् = राजानस्। 'ससजुषोः रु' से स् को रु। में रु का लोप होने पर — राजानर् 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग होकर — राजानः।

सम्बोधन के एकवचन में हे राजन् सु। सु में उ की इत्संज्ञा और लोप— हे राजन् स्। 'हलङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्पृक्तं हल्' से सु के स् का लोप होकर— हे राजन्। अब हे राजन् के न् का 'न लोपः' प्रातिपदिकान्तस्य सूत्र से लोप होना चाहिये, किन्तु इसका निषेध करने वाला सूत्र है —

२८१. न ङिसम्बुद्धयोः। ८। २। ८।

नस्य लोपो न, ङौ सम्बुद्धौ च। हे राजन्।

यदि सप्तमी एकवचन का ङि विभक्तिप्रत्यय परे हो या सम्बुद्धि परे हो तो (प्रातिपदिकान्त) न् का लोप नहीं होता।

सूत्र में न = नहीं। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से लोपः शब्द की अनुवृत्ति होगी। ङि-सम्बुद्धयोः = सप्तमी द्विवचन = ङि और सम्बुद्धि के परे रहने पर।)

'हे राजन्' में यद्यपि सम्बुद्धि के सु (स्) का लोप हो गया है, तथापि 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' से न् से परे सम्बुद्धि माना जायेगा और इस कारण हे राजन् के न् का लोप नहीं होगा— हे राजन्।

सम्बोधन के द्विवचन एवं बहुवचन के रूप प्रथमा के समान ही होते हैं।

हे राजानौ, हे राजानः।

द्वितीया एकवचन में राजन् + अम् के बाद 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से राजन् की उपधा को दीर्घ - राजान् + अम् = राजानम्। द्वितीया बहुवचन में राजन् + शस्। श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप होने पर- राजन् + अस्। 'अल्लोपोऽनः' (अंग के अवयव अन् शब्द के अ का लोप हो यदि सर्वनामस्थान से भिन्न यकारादि और अजादि प्रत्यय परे हों।) सूत्र से राजन् के अन् में अ का अजादि (अस्) परे रहने के कारण लोप होगा- राजन् अस्। 'स्तो श्चुना श्चु' सूत्र से न् को ज्- राज् ज् अस् = राज्ञस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र् और फिर र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर राज्ञः।

तृतीया एकवचन में-राजन् + टा। 'चुटू' से ट् की इत्संज्ञा और लोप होने पर- राजन् + आ। 'अल्लोपोऽनः' से अन के अ का लोप- राजन् आ। 'स्तोः श्चुना श्चुः' से न् को ज्- राज्ज् आ = राज्ञा।

तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में राजन् + भ्याम्। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न् का लोप- राज + भ्याम्। 'सुपि च' से राज के अ को दीर्घ होना चाहिये, किन्तु आगे आने वाले सूत्रानुसार यहाँ न् का लोप असिद्ध है अर्थात् न् का लोप हुआ नहीं माना जायगा। जब लोप हुआ नहीं माना जायगा तो वे कार्य नहीं होंगे जो अकारान्त अंग से परे भ्याम्, भिस् भ्यस् विभक्ति प्रत्यय होने पर किये जाते हैं यथा, 'सुपि च' से दीर्घ, 'अतो भिस् ऐस्' से भिस् को ऐस्, 'बहुवचने झल्येत्' से अंग के अन्त में आये हुए अ को ए। न् के लोप को असिद्ध बताने वाला सूत्र है -

२८२. नलोपः सुप्स्वरसंज्ञा-तुग्विधिषु कृति। ८। २। २।

सुब्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ कृति तुग्विधौ च नलोपोऽसिद्धो नान्यत्र 'राजाश्व' इत्यादौः इत्यसिद्धत्वाद् आत्वमेत्वमैस्त्वं च न। राजभ्याम्। राजभिः। राजभ्यः, राजभ्यः। राजनि, राज्ञि। राजसु।

जब सुप् विधि (अर्थात् सुप् विभक्ति प्रत्यय सम्बन्धी विधि) हो, स्वरविधि (स्वर का विधान) हो, संज्ञा विधि हो (अर्थात् संज्ञा का विधान किया गया हो) और कृत् प्रत्यय परे होने पर तुक् का विधान हो, तब न् का लोप असिद्ध होता है।

नकार के लोप का सूत्र है 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य (सूत्र १८०) c। २। ७ जो त्रिपादी का सूत्र है। सुप्विधि, स्वरविधि, संज्ञाविधि, कृत्प्रत्ययपरक तुग्विधि में जो सूत्र होते हैं वे सवा सात अध्याय के भीतर के होते हैं, अतः उनकी दृष्टि में त्रिपादी का सूत्र 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' असिद्ध होने के कारण इस सूत्र द्वारा किया गया न् का लोप भी असिद्ध होने से राजन्भ्याम् से राजभ्याम् की स्थिति में 'सुपि च' से दीर्घ नहीं होगा, क्योंकि 'सुपि च' की दृष्टि में तो न् का लोप हुआ ही नहीं है। अतएव दीर्घ न होकर रूप होगा— राजभ्याम्। इसी प्रकार तृतीया बहुवचन में राजन् भिस् होने पर 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न् का लोप— राजभिस्। अब 'अतो भिस् ऐस्' प्रवृत्त नहीं होगा, अतः— राजभिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु में उ का लोप— राजभिर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग— राजभिः।

चतुर्थी एकवचन में राजन् + डे। 'लशक्वतद्धिते' से 'ङ्' की इत्संज्ञा और लोप होकर— राजन् + ए। 'अल्लोपोऽनः' से अन् के अ का लोप— राजन् ए। 'स्तोःश्चुनाश्चुः' से न् को ज्—राज् ज् ए = राज्ञे। चतुर्थी और पंचमी बहुवचन में राजन्— भ्यस्। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से राजन् के न् का लोप होकर राजभ्यस्। स को रु, रु को र्, र् को विसर्ग—राजभ्यः। पंचमी एकवचन में राजन् + डसि तथा षष्ठी एकवचन में राजन् + डस् होने पर क्रमशः ङ् और ङ तथा इ का लोप होकर दोनों स्थलों पर—राजन् + अस्। 'अल्लोपोऽनः' से राजन् में अन् में अ का लोप होकर— राज् न् अस्। 'स्तोःश्चुनाश्चुः' से न् को ज्—राज् ज् अस् = राज्ञस्। स् को रु। रु को र्। र् को विसर्ग करने पर— राज्ञः।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में—राजन् + ओस्। 'अल्लोपोऽनः' से अन् के अ का लोप—राज् न् ओस्। 'स्तोःश्चुनाश्चुः' से न् को ज् करने पर—

राज्ञीस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु में उ का लोप— राज्ञोर्।
'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग करने पर— राज्ञोः।

षष्ठी बहुवचन में राजन् + आम्। 'अल्लोपोऽनः' से अन् के अ कां लोप—
राज् न् आम्। 'स्तोः श्चुना श्चुः' से न् को ज्— राज् ज् आम् = राज्ञाम्।

सप्तमी एकवचन में राजन् + ङि। ङ् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और
लोप करने पर राजन् इ। 'अल्लोपोऽनः' से अन् के अ का लोप' राज् न् इ। 'स्तोः
श्चुना श्चुः' से न् को ज् करने पर— राज्ञि।

'दधि' शब्द के प्रसंग में 'विभाषा ङिश्योः' सूत्र आया है जिसके अनुसार
अङ्ग के अवयव अन शब्द के अ का विकल्प से लोप होता है यदि सर्वनाम
स्थान से भिन्न यकारादि और अजादि प्रत्ययों में ङि एवं शी परे हो।

यहाँ ङि परे है अतः अन् के अ का लोप विकल्प से होगा। अ का लोप
न करने पर— राजन् + इ = राजनि।

सप्तमी बहुवचन में— राजन् सुप्। प् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, 'तस्य
लोपः' से लोप— राजन् सु। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न् का लोप होकर—
राजसु।

राजन् शब्द के रूप इस प्रकार हुए—

प्रथमा	राजा	राजानौ	राजानः
द्वितीया	राजानम्	"	राज्ञः
तृतीया	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
चतुर्थी	राज्ञे	"	राजभ्यः
पंचमी	राज्ञः	"	"
षष्ठी	"	राज्ञोः	राज्ञाम्
सप्तमी	राज्ञि, राजनि	"	राजसु
संबोधन	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः

नकारान्त मघवन् शब्द

मघवन् (= इन्द्र) शब्द नकारान्त पुल्लिङ्ग है। इसके रूप दो प्रकार से होते हैं। पहले प्रकार से मघवन् के न् को तृ आदेश होता है। इसे तृत्वपक्ष या तृत्वादेश पक्ष कह सकते हैं।

प्रथमा एकवचन में मघवन् सु होने पर न् को तृ आदेश के लिये सूत्र है —

२८८. मघवा बहुलम् । ६ । ४ । १२८

‘मघवन्’ शब्दस्य वा तृ इत्यन्तादेशः । ऋ इत् ।

मघवन् शब्द के स्थान पर विकल्प से तृ आदेश हो ।

तृ में ऋ अनुबन्ध है, अतः तृ को अनेकाल् नहीं माना जायगा। नियम है ‘नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम्’ अर्थात् अनुबन्ध के कारण अनेकाल्ता नहीं मानी जाती। अतएव तृ आदेश मघवन् के न हो होगा।

मघवत् + सु में तृ के ऋ की इत्संज्ञा और लोप करने पर— मघवत् सु। सु में उ की इत्संज्ञा और लोप करने पर— मघवत् स् ।

मघवत् उगित है। उक् + इत् = उक् की इत्संज्ञा वाला। उक् = उ ऋ लृ। मघवत् में ऋ की इत्संज्ञा हुई है अतः उगित है। अब सूत्र प्राप्त हुआ —

२८९. उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः । ७ । ७ । ७० ।

अधातोरुगितो न लोपितोऽञ्चतेश्च नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने परे। मघवान्, सघवन्तौ, मघवन्तः हे मघवन्। मघव्भ्याम्। तृत्वाभावे मघवा। सुटि राजवत्।

यदि सर्वनामस्थान (सु, औ, जस, अम्, औट्) परे हो तो धातु से भिन्न उगित और न के लोप वाली अञ्चु धातु को नुम् का आगम होता है।

यहाँ उगित मघवत् को नुम् का आगम हुआ। ‘मिदचोऽन्त्यात्परः’ सूत्र से मित् आगम अन्तिम अच् से परे होता है, अतः मघवत् में व के अ से परे नुम् होगा—

मघव नुमत् स। नुम् में उ और म् का लोप करने पर मघवन् त् स्। 'हलङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्थपृक्तं हल्' से स् का लोप— मघवन् त्। 'संयोगान्तस्य लोपः' से त् का लोप— मघवन्। 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' (सूत्र-१७७) से नकारान्त की उपधा को दीर्घ करने पर— मघवान्।

प्रथमा द्विवचन में और द्वितीया द्विवचन में मघवन् + औ होने पर 'मघवा बहुलम्' सूत्र से न् को त् आदेश और त् में ऋ का लोप करने पर मघवत् + औ। 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से नुम् का आगम हुआ, 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से अन्तिम अच् से परे नुम् हुआ— मघव नुम् त् औ। नुम् में उ और म् का लोप करने पर— मघव न् त् औ = मघवन्तौ।

प्रथमा बहुवचन में मघवन् + जस् होने पर जस् में ज् की 'चुटू' से इत्संज्ञा और लोप करने पर— मघवन् अस्। 'मघवा बहुलम्' से मघवन् के न् को त् आदेश करने और त् में ऋ का लोप करने पर— मघवत् अस्। 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से नुम् का आगम होगा, 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से अन्तिम अच् से परे आगम करने पर—मघव नुम् त् अस्। नुम् में उ और म् का लोप करने पर—मघवन् त् अस् = मघवन्तस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर— मघवन्तः।

द्वितीया एकवचन में मघवन् + अम्। 'मघवा बहुलम्' से न् को त् करने पर— मघवत् अम्। ऋ का लोप करने पर— मघवत् अम्। 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से नुम् का आगम, और 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से अन्तिम अच् से परे नुम् करने पर—मघव नुम् त् अम्। नुम् में उ और म् का लोप करने पर— मघवन् त् अम् = मघवन्तम्।

द्वितीया बहुवचन में मघवन् + शस्। शस् में श् की 'लशक्वतद्धिते' इत्संज्ञा और लोप करने पर— मघवन् अस्। 'मघवा बहुलम्' से न् को त् और त् में ऋ का लोप करने पर— मघवत् अस् = मघवतस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर मघवतः।

तृतीया एकवचन में मघवन् + टा। टा में 'चुटू' से ट् की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप करने पर मघवन् + आ। 'मघवा बहुलम्' से मघवन् को त् आदेश होगा जो अन्तिम न् के स्थान पर होगा— मघवत् आ। त् में ऋ का लोप करने पर मघवत् आ = मघवता। (सर्वनामस्थान परे न होने से नुम् आगम

नहीं होता।)

तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में मघवन् भ्याम्। मघवन् को 'मघवा बहुलम्' से तृ आदेश जो अन्तिम अल् न् को होगा— मघवत् भ्याम्। तृ में ऋ का लोप करने पर— मघवत् भ्याम्। 'झलां जश् झशि' से तृ को द आदेश करने पर— मघवद् भ्याम्।

तृतीया बहुवचन में मघवन् भिस्। 'मघवा बहुलम्' से मघवन् को तृ आदेश होगा, जो अन्तिम न् के स्थान पर होगा— मघवत् भिस्। तृ में ऋ का लोप करने पर— मघवत् भिस्। 'झलां जश् झशि' से तृ को द करने पर— मघवद्भिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर— मघवद्भिः।

चतुर्थी एकवचन में— मघवन् + डे। 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप करने पर मघवन् ए। 'मघवा बहुलम्' से मघवन् के न् को तृ आदेश हुआ— मघवत् ए। तृ में ऋ का लोप करने पर मघवत् ए = मघवते।

चतुर्थी और पंचमी बहुवचन में मघवन्भ्यस्। 'मघवा बहुलम्' से मघवन् के न् को तृ आदेश होगा— मघवत्भ्यस्। तृ में ऋ का लोप करने पर— मघवत्भ्यस्। 'झलां जश् झशि' से तृ को द करने पर— मघवद्भ्यस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर— मघवद्भ्यः।

पंचमी एकवचन में मघवन् + डसि में ड् और इ का लोप करने पर तथा षष्ठी एकवचन में मघवन् + डस् में ड् का लोप करने पर हुआ— मघवन् + अस्। 'मघवा बहुलम्' सूत्र से मघवन् के न् को तृ आदेश— मघवत् अस्। तृ में ऋ का लोप— मघवत् अस् = मघवतः।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में मघवन् ओस्। 'मघवा बहुलम्' से मघवन् के न् को तृ आदेश— मघवत् ओस्। तृ में ऋ का लोप करने पर— मघवत् ओस् = मघवतोस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर— मघवतोः।

षष्ठी बहुवचन में मघवन् + आम्। 'मघवा बहुलम्' से मघवन् के न् को

तृ आदेश- मघवत् आम्। तृ में ऋ का लोप करने पर-मघवत् आम् = मघवताम्।

सप्तमी एकवचन में मघवन् + डि। 'लशक्वतद्धिते' से ङ् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप- मघवन् + इ। 'मघवा बहुलम्' से मघवन् के न् को तृ आदेश और तृ में ऋ का लोप होकर- मघवत् इ = मघवति।

सप्तमी बहुवचन में मघवन् + सुप्। सुप् में प् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप करने पर- मघवन् सु। 'मघवा बहुलम्' से मघवन् के न् को तृ आदेश मघवत् सु। तृ के ऋ का लोप करने पर- मघवत् सु = मघवत्सु।

संबोधन प्रथमा में हे मघवन् + सु। सु में उ की इत्संज्ञा और लोप। हे मघवन् स्। 'मघवा बहुलम्' से मघवन् के न् को तृ आदेश, तृ में ऋ का लोप करने पर हे मघवत् स्। 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से नुम् का आगम, 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से अन्तिम अच् से परे नुम् होगा- हे मघव नुम्, त् स्। नुम् में उ और म् का लोप करने पर हे मघव न् त् स्। 'हलङ्ग्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्पर्कं हल्' से स् का लोप करने पर- हे मघवन् त्। 'संयोगान्तस्य लोपः' से त् का लोप करने पर- हे मघवन्। (सम्बुद्धि परे होने से 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से होने वाला उपधा को दीर्घ करने का कार्य नहीं होगा।)

संबोधन के द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा के समान ही हे मघवन्तौ, हे मघवन्तः।

तृत्वादेश पक्ष में मघवन् के रूप इस प्रकार हुए -

प्रथमा	मघवान्	मघवन्तौ	मघवन्तः
द्वितीया	मघवन्तम्	"	मघवतः
तृतीया	मघवता	मघवद्भ्याम्	मघवद्भिः
चतुर्थी	मघवते	"	मघवद्भ्यः
पंचमी	मघवतः	"	"
षष्ठी	"	मघवतोः	मघवताम्
सप्तमी	मघवति	"	मघवत्सु
संबोधन	हे मघवन्	हे मघवन्तौ	हे मघवन्तः

तृ आदेश न करने पर मघवन् के रूप

प्रथमा एक वचन में मघवन् + सु। सु में उ की इत्संज्ञा और लोप करने पर— मघवन् + स्। यहाँ भी 'हलङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्स्यपृक्तं हल्' (३।१।६६) से अपृक्त स् का लोप तथा 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' (६।५।८) से मघवन् की उपधा को दीर्घ एक साथ प्राप्त होगा 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' से पहले उपधा को दीर्घ होगा— मघवान् स्, तब अपृक्त स् का लोप होकर— मघवान्। 'न लोपः प्रतिपादिकान्तस्य' से न् का लोप करने पर— मघवा।

प्रथमा द्विवचन और द्वितीया द्विवचन में मघवन् + औ होने पर मघवन् की उपधा को 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से दीर्घ करने पर—मघवानौ।

प्रथमा बहुवचन में मघवन् + जस्। ज् की 'चुटू' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप करने पर—मघवन् अस्। 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से मघवन् की उपधा को दीर्घ होगा— मघवान्स्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र। र को 'खरववानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर— मघवानः।

द्वितीया एकवचन में मघवन् अम्। 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से मघवन् की उपधा को दीर्घ करने पर— मघवानम्।

द्वितीया बहुवचन में मघवन् जस्। जस् में ज् की 'चुटू' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप करने पर—मघवन् अस्। अब सम्प्रसारण के लिये सूत्र है—

२६०. श्व-युव-मघोनामतदिते । ६ । ४ । १३३

अन्नन्तानां भानामेषामतदिते संप्रसारणम् । मघोनः । मघवम्याम् ।

जिनके अन्त में अन् हो ऐसे श्वन्, युवन् और मघवन् भसंज्ञक शब्दों को तदित से भिन्न प्रत्यय परे होने पर सम्प्रसारण होता है।

भसंज्ञा का सूत्र है 'यचि भम्' (१६५) जिसका अर्थ है कि य् से और अच् से आरम्भ होने वाला सर्वनामस्थान से भिन्न सु आदि प्रत्यय परे हो तो पूर्वशब्द समुदाय को भसंज्ञा होती है। सम्प्रसारण का सूत्र है 'इग्यणः सम्प्रसारणम्' (सूत्र २५६) जिसके अनुसार यण् (य् व र्) के स्थान पर विधान किये गये इक् (इ उ ऋ) की सम्प्रसारण संज्ञा होती है। मघवन् अस् में व् को 'श्वयुवमघोनामतदिते' से उ सम्प्रसारण होगा— मघ उ अ न् अस्। 'सम्प्रसारणाच्च' (सूत्र २५८) से

सम्प्रसारण के बाद आये हुए अच् को पूर्वरूप एकादेश होता है। अतः उ + अ = उ करने पर मघ उ न् अस्। आदगुणः से मघ के अ और उससे परे आये उ को गुण एकादेश ओ होगा— मघोनस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र। र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर — मघोनः।

तृतीया एकवचन में मधवन् + टा। 'चुटू' से ट की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप करने पर— मधवन् आ। व् को 'श्वयुवमघोनामतदिते' से सम्प्रसारण उ होगा— मघ उ अ न् आ 'सम्प्रसारणाच्च' से सम्प्रसारण के बाद आये हुए अच् को पूर्वरूप एकादेश होगा— मघ उ न् आ। 'आदगुणः' से मघ के अ और उससे परे उ को गुण एकादेश ओ करने पर— मघोना।

तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में मधवन्भ्याम्। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न् का लोप करने पर — मधवभ्याम्। तृतीया बहुवचन में मधवन् + भिस्। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न् का लोप करने पर— मधवभिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र। र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर— मधवभिः।

चतुर्थी एकवचन में मधवन् + डे। 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप करने पर मधवन् ए। 'श्वयुवमघोनामतदिते' से व् को सम्प्रसारण उ हुआ— मघ उ अ न् ए। 'सम्प्रसारणाच्च' से उ + अ को पूर्वरूप उ करने पर— मघ उ न् ए। 'आदगुणः' से गुण एकादेश अ + उ = ओ करने पर—मघोने।

चतुर्थी और पंचमी बहुवचन में मधवन् + भ्यस्। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न् का लोप होगा— मधवभ्यस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रुः। रु को र। र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर— मधवभ्यः।

पंचमी के एकवचन में मधवन् + डसि में ड् और इ का लोप करने पर, तथा षष्ठी एकवचन में मधवन् + डस् में ड् का लोप करने पर मधवन् अस्। 'श्वयुवमघोनामतदिते' से व् को उ सम्प्रसारण होगा— मघ उ अ न् अस्। 'सम्प्रसारणाच्च' से उ और अ को पूर्वरूप एकादेश उ होकर— मघ उन् अस्। 'आदगुणः' से अ + उ को गुण एकादेश 'ओ' करने पर— मघोनस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र। र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर मघोनः।

षष्ठी द्विवचन और सप्तमी द्विवचन में मधवन् + ओस्। 'श्वयुवमघोनामतदिते' से व् को सम्प्रसारण उ— मघ उ अन् ओस्। 'सम्प्रसारणाच्च' से उ + अ को पूर्वरूप एकादेश उ करने पर— मघ उ न् ओस्। 'आद्गुणः' से अ + उ को गुण एकादेश ओ करने पर— मघोनोस्। 'ससजुषोः रुः' से स् रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर— मघोनः।

षष्ठी बहुवचन में मधवन् + आम्। 'श्वयुवमघोनामतदिते' से व् को सम्प्रसारण उ— मघ उ अन् आम्। 'सम्प्रसारणाच्च' से उ + अ को पूर्वरूप एकादेश उ करने पर— मघ उ न् आम्। 'आद्गुणः' से अ + उ को गुण एकादेश ओ होकर— मघोनाम्।

सप्तमी एकवचन में मधवन् + डि। 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा और लोप करने पर— मधवन् इ। 'श्वयुवमघोनामतदिते' से व् को उ सम्प्रसारण होगा— मघ उ अन् इ। 'सम्प्रसारणाच्च' से उ + अ को पूर्वरूप एकादेश उ होकर— मघ उ न् इ। 'आद्गुणः' से अ + उ को गुण एकादेश ओ करने पर— मघोनि।

सप्तमी बहुवचन में मधवन् + सुप्। प् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप करने पर— मधवन् सु। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न लोप करने पर सिद्ध हुआ— मधवसु।

संबोधन में प्रथमा के समान ही— हे मधवा। हे मधवानौ। हे मधवानः।

तृत्वादेश न करने पर मधवन् के रूप इस प्रकार होंगे—

प्रथमा	मधवा	मधवानौ	मधवानः
द्वितीया	मधवानम्	"	मघोनः
तृतीया	मघोना	मधवभ्याम्	मधवभिः
चतुर्थी	मघोने	"	मधवभ्यः
पंचमी	मघोनः	"	"
षष्ठी	"	मघोनोः	मघोनाम्
सप्तमी	मघोनि	"	मधवसु
संबोधन	हे मधवा	हे मधवानौ	हे मधवानः

नकारान्त 'पञ्चन्' शब्द

संख्यावाचक पञ्चन् शब्द नकारान्त है और इसके रूप तीनों लिंगों में एक समान होते हैं। यह नित्यबहुवचनान्त है, अतः इसके रूप बहुवचन सुप् विभक्तियों (जस्, शस्, भिस्, भ्यस्, आम् और सुप्) में ही होते हैं।

प्रथमा बहुवचन में पंचन् + जस् होने पर इसकी षट्संज्ञा होती है। सूत्र है -

२६७. षण्णान्ता षट्। १। १। २३

षण्णान्ता नान्ता च सङ्ख्या षट्संज्ञा स्यात्। 'पञ्चन्' शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। पञ्च। पञ्च। पञ्चभिः। पञ्चभ्यः। नुट्-

षकारान्त और नकारान्त संख्यावाचक शब्द की षट्संज्ञा होती है। पंचन् शब्द नित्य बहुवचनान्त होता है।

पञ्चन् की षट्संज्ञा होने पर 'षड्भ्यो लुक्' सूत्र प्राप्त होता है। जिसका अर्थ है कि षट्संज्ञक से परे जस् और शस् का लुक् हो।

पंचन् + जस् में जस् का लुक् होने पर पञ्चन् शेष बचा। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से न् का लोप करने पर - पंच। इसी प्रकार द्वितीया बहुवचन में - पंच।

तृतीया बहुवचन में - पंचन् + भिस्। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न् का लोप करने पर - पंचभिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर पंचभिः।

चतुर्थी और पंचमी के बहुवचन में - पञ्चन् + भ्यस्।

'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न् को लोप - पञ्चभ्यस्। 'ससजुषो रु' से स को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर - पञ्चभ्यः।

षष्ठी बहुवचन में - पञ्चन् + आम्। 'षण्णान्ता षट्' से पंचन् की षट्संज्ञा हुई।

(षट्चतुर्भ्यश्च । ७ । १ । ५५

षट्संज्ञकेभ्यश्चतुरश्चामो नुडागमः स्यात् ।

षट्संज्ञक से परे तथा चतुर् शब्द से परे आम् को नुट् का आगम हो

षट्संज्ञक पञ्चन् से परे आम् को नुट् का आगम होने पर नुट् टित् होने से पहले होगा— पञ्चन् नुट् आम् । उ और ट् का लोप करने पर— पञ्चन् आम् = पञ्चन् नाम् ।

२६८. नोपधायाः । ६ । ४ । ७ ।

नान्तस्योपधाया दीर्घः स्यान्नामि परे । पञ्चानाम् पञ्चसु ।

यदि 'नाम्' परे हो तो नकारान्त की उपधा को दीर्घ हो ।

पञ्चन् की उपधा अ को दीर्घ होकर— पञ्चान् नाम् । 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से पञ्चान् के न् का लोप होकर सिद्ध हुआ— पञ्चानाम् ।

सप्तमी बहुवचन में पञ्चन् + सुप् । प् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, लोपः से लोप— पञ्चन् सु । न् की 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से लोप करने पर— पञ्चसु ।

पञ्चन् के रूप इस प्रकार हुए —

प्रथमा	—	—	पञ्च
द्वितीया	—	—	पञ्च
तृतीया	—	—	पञ्चभिः
चतुर्थी	—	—	पञ्चभ्यः
पंचमी	—	—	"
षष्ठी	—	—	पञ्चानाम्
सप्तमी	—	—	पञ्चसु

जकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द ऋत्विज्

ऋत्विज् शब्द ऋतु के साथ यज् धातु से क्विन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न है। ऋत्विज् बड़े यज्ञ को कराने वाले पुरोहित को कहते हैं। ऋत्विज् शब्द कृदन्त है अतः 'कृत्तदितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा होगी।

प्रथमा एकवचन में ऋत्विज् + सु। उ की इत्संज्ञा और लोप होने पर ऋत्विज् स्। 'हलङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्पृक्तं हल' से सु के अपृक्त हल् स् का लोप हो गया— ऋत्विज्।

३०४. क्विन्प्रत्ययस्य कुः। ८। २। ६२

क्विन्प्रत्ययो यस्मात् तस्य कवर्गोऽन्तादेशः स्यात् पदान्ते। अस्यासिद्धत्वात् 'चोः कुः' इति कुत्वम्। ऋत्विक्, ऋत्विग्, ऋत्विजौ, ऋत्विग्भ्याम्।

जिससे क्विन् प्रत्यय किया गया हो उसको पदान्त में कवर्ग अन्तादेश होता है। यह सूत्र जहाँ असिद्ध होता है वहाँ 'चोः कुः' (८। २। ३०) सूत्र से चवर्ग को कवर्ग हो जाता है।

ऋत्विज् शब्द के अन्त में क्विन् प्रत्यय है अतः पद के अन्त में आये हुए ज् को कवर्ग का तृतीय वर्ण ग् आदेश होगा। क्विन्प्रत्ययस्य कुः जो कि त्रिपादी में बाद का सूत्र है और 'चो कुः' त्रिपादी में पहले का सूत्र है। 'चो कुः' सूत्र के प्रति 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' असिद्ध माने, तो 'चो कुः' से ही चवर्ग को कवर्ग आदेश हो जायेगा। तब रूप होगा— ऋत्विग्। 'वाङ्मसाने' सूत्र से ग् को विकल्प से क् होकर, दो रूप होंगे— ऋत्विक्, ऋत्विग्।

प्रथमा द्विवचन में ऋत्विज् + औ = ऋत्विजौ। बहुवचन में ऋत्विज् जस्। ज् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप होने पर— ऋत्विजस्। स् को 'ससजुषोः रुः' से रु। रु को २। २ को 'खरवानयोर्विसजीयः' से विसर्ग— ऋत्विजः।

द्वितीया एकवचन में ऋत्विज् + अम् = ऋत्विजम् । द्वितीया द्विवचन में ऋत्विज् + औट् । ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप होकर— ऋत्विजौ । द्वितीया बहुवचन में ऋत्विज् + शस् । श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप होने पर ऋत्विज् + अस् = ऋत्विजस् । स् को 'ससजुषोः रुः' से रु । रु को र् । र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर— ऋत्विजः ।

तृतीया एकवचन में ऋत्विज् + टा । 'चुटू' से ट् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप— ऋत्विज् + आ = ऋत्विजा । तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में— ऋत्विज् + भ्याम् । 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' से ऋत्विज् की पदसंज्ञा होगी । पदान्त ज् को 'चोः कुः' सूत्र से कवर्ग का तृतीया वर्ण ग् होकर— ऋत्विज् + भ्याम् = ऋत्विग्भ्याम् ।

तृतीया बहुवचन में ऋत्विज् + भिस् । 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' से ऋत्विज् की पदसंज्ञा होकर 'चोः कुः' से ज् को कवर्ग का तृतीय वर्ण ग् हुआ— ऋत्विग्भिस् । स् को 'ससजुषोः रुः' से रु । रु को र् । र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग— ऋत्विग्भिः ।

चतुर्थी एकवचन में— ऋत्विज् + डे । ड् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप करने पर— ऋत्विज् + ए = ऋत्विजे । चतुर्थी और पंचमी के बहुवचन में ऋत्विज् + भ्यस् । 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' से ऋत्विज् की पदसंज्ञा होकर, पदान्त ज् को 'चोः कुः' से कवर्ग का तृतीय वर्ण ग् आदेश हुआ— ऋत्विग्भ्यस् । 'ससजुषोः रुः' से स् को रु । रु को र् । 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग करने पर— ऋत्विग्भ्यः ।

पंचमी एकवचन में ऋत्विज् + डसि और षष्ठी एकवचन में ऋत्विज् + डस् होने पर प्रथम में ड् और इ का तथा दूसरे में ड् का लोप होने पर— ऋत्विज् + अस् = ऋत्विजस् । 'ससजुषोः रुः' से स को रु । रु को र् । र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर— ऋत्विजः ।

षष्ठी द्विवचन और सप्तमी द्विवचन में— ऋत्विज् + ओस् = ऋत्विजोस् । स् को 'ससजुषोः रुः' से रु । रु को र् । र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर— ऋत्विजोः । षष्ठी बहुवचन में ऋत्विज् + आम् = ऋत्विजाम् ।

सप्तमी एकवचन में ऋत्विज् + डि। 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप करने पर— ऋत्विज् + इ = ऋत्विजि।

सप्तमी बहुवचन में ऋत्विज् + सुप्। प की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप करने पर— ऋत्विज् सु। 'ऋत्विज्' की 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' पदसंज्ञा, 'चोः कुः' से पदान्त ज् को ग्। ग् को 'खरि च' से क्— ऋत्विक् सु। 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को ष्— ऋत्विक् षु = ऋत्विक्षु।

संबोधन के सभी वचनों के रूप प्रथमा के समान ही होते हैं।

इस प्रकार ऋत्विज् के रूप निम्नलिखित हुए—

प्रथमा	ऋत्विक् ऋत्विग्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः
द्वितीया	ऋत्विजम्	"	"
तृतीया	ऋत्विजा	ऋत्विग्याम्	ऋत्विग्भिः
चतुर्थी	ऋत्विजे	"	ऋत्विग्भ्यः
पंचमी	ऋत्विजः	"	"
षष्ठी	"	ऋत्विजोः	ऋत्विजाम्
सप्तमी	ऋत्विजि	ऋत्विजोः	ऋत्विक्षु
संबोधन	हे ऋत्विक्, हे ऋत्विग्, हे ऋत्विजौ	हे ऋत्विजौ	हे ऋत्विजः

ऋत्विज् शब्द की रूप सिद्धि में आया हुआ 'चोः कुः' सूत्र इस प्रकार है—

३०६. चोः कुः। ८। २। ३०

चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि पदान्ते च।

यदि चवर्ग के बाद झल् वर्ण हो, अथवा चवर्ग पद के अन्त में हो तो उसे कवर्ग आदेश होता है।

(यहाँ 'झलो झलि' सूत्र से झलि पद लिया जाता है ओर 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' से अन्ते लेकर सूत्र का अर्थ किया जाता है।)

दकारान्त 'युष्मद्' शब्द

युष्मद् और अस्मद् शब्द दकारान्त है और यह तीनों लिंगों में एक समान होता है। यहाँ हम दोनों की रूपसिद्धि अलग-अलग दे रहे हैं।

प्रथमां एकवचन में युष्मद् + सु होने पर

३११. डे प्रथमयोरम् । ७ । १ । २८ ।

युष्मदस्मदभ्यां परस्य डे इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चामादेशः स्यात् ।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे डे को और प्रथमा एवं द्वितीया विभक्ति में अम् आदेश होता है।

सु को अम् आदेश हुआ— युष्मद् + अम् ।

'न विभक्तौ तुस्माः' से म् का लोप नहीं होगा।

३१२. त्वाहौ सौ । ७ । २ । ६४ ।

अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वाहावादेशौ स्तः सौ परे ।

युष्मद् और अस्मद् में म् तक के अंश के स्थान पर अर्थात् युष् और अस्म् के स्थान पर त्व और अह आदेश हो।

युष्मद् अम् में युष् को त्व आदेश होने पर त्व अद् अम् ।

३१३. शेषे लोपः । ७ । २ । ६० ।

एतयोष्टिलोपः । त्वम्, अहम् ।

युष्मद् और अस्मद् की टि का लोप हो।

त्व अद् में अद् टि है उसका लोप होनेपर— त्व अम् । 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप करने पर— त्वम् ।

प्रथमा द्विवचन में युष्मद् + औ होने पर 'डे प्रथमयोरम्' से औ को अम् होकर— युष्मद् + अम् ।

३१४. युवावौ द्विवचने । ७ । २ । ६२ ।

द्वयोरुक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ ।

द्विवचन में विभक्ति परे होने पर युष्मद् और अस्मद् के मपर्यन्त भाग को क्रमशः युव और आव आदेश हो ।

युष्मद् + अम् को युव अद् + अम् हो गया । अब यहाँ अद् के द् को आ आदेश करने के लिये सूत्र है—

३१५. प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् । ७ । २ । ८८

औङ्येतयोरात्वं लोके । युवाम् । आवाम् ।

लोक में यदि प्रथमा के द्विवचन की विभक्ति प्रत्यय परे हो तो युष्मद् और अस्मद् को आ आदेश हो ।

(‘युष्मदस्मदोरनादेशे’ सूत्र से युष्मदस्मदोः (षष्ठी द्विवचन) ग्रहण किया है । युष्मद् अस्मद् के स्थान पर आ आदेश हो ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि ‘अलोऽन्त्यस्य’ से अन्तिम अल् द् के स्थान पर आ हो ।)

युव अद् + अम् में द् के स्थान पर आ आदेश करने पर युव आ अम् । ‘अतो गुणे’ सूत्र से युव के अन्त में आये अ और उससे परवर्ती अ दोनों के स्थान पर पररूप एकादेश ‘अ’ होगा— युव आ अम् । ‘अकः सवर्णे दीर्घः’ से युव के अन्त में आये अ और उससे परे आये आ को दीर्घ एकादेश होने पर— युवा + अम् । ‘अमि पूर्वः’ से पूर्वरूप करने पर—युवाम् ।

प्रथमा बहुवचन में युष्मद् + जस् । ‘डे प्रथमोयोरम्’ से जस् को अम्— युष्मद् + अम् ।

३१६. यूयवयौ जसि । ७ । २ । ६३

अनयोर्मपर्यन्तस्य यूयवयौ स्तो जसि । यूयम् । वयम् ।

जस् परे होने पर युष्मद् और अस्मद् के मपर्यन्त अंशों क्रमशः युष्मद्

और अस्म् के स्थान पर यूयः और वय आदेश होते हैं।

युष्मद् + अम् में युष् को यूयः आदेश करने पर यूया अद् + अम्। 'शेषे लोपः' से अद् का लोप— यूय + अम्। 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होने पर— यूयम्।

द्वितीया के एकवचन में युष्मद् + अम् होने पर—

३१७. त्वमावेकवचने। ७। २। ६७।

एकस्योक्तावययोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ।

यदि एकत्व कथन हो तो युष्मद् और अस्मद् के मपर्यन्त भाग को त्व और म आदेश हो।

अर्थात् युष् को त्व तथा अस्म् को म आदेश हो। युष्मद् + अम् में युष् को त्व होने पर— त्व अद् अम्।

३१८. द्वितीयायांच। ७। २। ८७।

अनयोरात् स्यात्। त्वाम्। माम्।

यदि द्वितीया विभक्ति का प्रत्यय परे हो तो युष्मद् और अस्मद् शब्दों को आ आदेश हो।

तात्पर्य यह कि युष्मद् और अस्मद् के अन्तिम वर्ण द् के स्थान पर आ हो। तब 'त्व अ आ अम्' हुआ। 'अतो गुणे' से त्व से अ और उससे परवर्ती अ के स्थान पर अ— त्व आ अम्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से त्व के अ और उससे परे आये आ के स्थान पर दीर्घ एकादेश आ— त्व अम्। 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर— त्वाम्।

द्वितीया द्विवचन में युष्मद् + औद् होने पर प्रथमा द्विवचन के समान ही रूप बनता है, केवल एक अन्तर यह होता है कि जहाँ प्रथमा द्विवचन में 'प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्' सूत्र से द् को आ होता है, वहाँ द्वितीया में 'द्वितीयायाञ्च' सूत्र से द् को आ होता है। यथा— युष्मद् + औद् में 'डे

प्रथमयोरम्' से औट् को अम्— युष्मद् अम्। 'युवावौ द्विवचने' से युष् के स्थान पर युव आदेश— युव अद् अम्। 'द्वितीयायाञ्च' से द् को आ— युव आ आ अम्। 'अतो गुणे' से युव के अ और उसके पर में आये अ के स्थान पर अ एकादेश— युव आ अम्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से अ + आ = आ होकर युवा अम्। 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होने पर युवाम्।

द्वितीया बहुवचन में युष्मद् + शस् होने पर 'लशक्यतदिते' से श् की इत्संज्ञा और तदनन्तर लोप होने पर— युष्मद् अस्। अब यहाँ 'डे प्रथमयोरम्' से अस् को अम् प्राप्त होने पर आगे आने वाला सूत्र अपवाद प्रस्तुत करता है—

३१६. शसो नः । ७ । ७ । २६

आभ्यां शसो नः स्यात्। अमोऽपवादः। आदेः परस्य। संयोगान्तलोपः। युष्मान् अस्मान्।

यदि युष्मद् और अस्मद् से परे शस् हो तो शस् को न् आदेश हो। यह न् शस् के अन्तिम अल् को होता है। परन्तु 'आदेः परस्य' सूत्र से पर के विषय में जो कार्य कहा जाता है वह उसके आदि वर्ण को होता है।

'युष्मद् अस्' में अस् में अ को न् आदेश होकर— युष्मद् न् स्। 'द्वितीयायाञ्च' सूत्र से युष्मद् के द् को आ होगा— युष् आ न् स्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से युष् के अ और आ के स्थान पर दीर्घ एकादेश— युष्मान् स्। 'संयोगान्तस्य लोपः' से स् का लोप करने पर — युष्मान्।

तृतीया एकवचन में— युष्मद् + टा। 'चुटू' से ट् की इत्संज्ञा और लोप। 'त्वमावेकवचने' सूत्र से युष् के स्थान पर त्व आदेश— त्व अद् + आ।

३२०. योऽचि । ७ । २ । ८६ ।

अनयोर्यकारादेशः स्यादनादेशोऽजादौ परतः। त्वया। मया।

यदि युष्मद् और अस्मद् से परे ऐसा अजादि विभक्ति प्रत्यय हो

जिसके स्थान पर कोई आदेश नहीं किया जाता, तो युष्मद् और अस्मद् को य् आदेश हो।

य् का आदेश अन्तिम अल् द के स्थान पर होता है— त्व अय् आ। 'अतो गुणे' से त्व के अ और उससे परवर्ती अ के स्थान पर अ = त्वय् आ = त्वया।

तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में युष्मद् + भ्याम् होने पर 'युवावौ द्विवचने' से मपर्यन्त भाग को युव— युव अद्भ्याम्।

३२१. युष्मदस्मदोरनादेशे । ७ । २ । ८६

अनयोरात् स्याद् अनादेशे हलादौ विभक्तौ । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युष्माभिः । अस्माभिः ।

जिन हलादि विभक्तियों के स्थान पर कोई आदेश न होता हो उनके परे रहने पर युष्मद् और अस्मद् के स्थान पर आ आदेश हो।

'युव अद्भ्याम्' में भ्याम् अनादेश हलादि विभक्ति है अतः द् को आ हुआ— युव अ आ भ्याम्। 'युव् के अ और उससे परे आये अ के स्थान पर 'अतो गुणे' से पररूप एकादेश युव आ भ्याम्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' करने पर— युवाभ्याम्।

तृतीया बहुवचन में युष्मद् + भिस् होने पर 'युष्मदस्मदोरनादेशे' सूत्र से द् को आ आदेश—युष्म आ भिस्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ एकादेश करने पर— युष्माभिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीय' से विसर्ग करने पर— युष्माभिः।

चतुर्थी एकवचन में युष्मद् + डे होने पर 'डे प्रथमयोरम्' से डे को अम् — युष्मद् + अम्।

३२२. तुभ्यमहयौ डयि । ७ । २ । ६५।

अनयोर्मपर्यन्तस्य । टिलोपः । तुभ्यम् । मह्यत् ।

युष्मद् और अस्मद् से परे डे होने पर इनके मपर्यन्त भाग युष्म और अस्म् के स्थान पर क्रमशः तुभ्य और मह्य आदेश हो।

युष्मद् + अम् में युष् को तुभ्य होने पर— तुभ्य अद् अम्। 'शेषे लोपः' से टि 'अद्' का लोप— तुभ्य अम्। 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप करने पर— तुभ्यम् सिद्ध हुआ।

चतुर्थी बहुवचन में युष्मद् + भ्यस् होने पर भ्यस् को अभ्यम् आदेश करने के लिये सूत्र है—

३२३. भ्यसोऽभ्यम्। ७। १। ३०

आभ्यां परस्य भ्यसोऽभ्यम् इत्यादेशः स्यात्। युष्मभ्यम् अस्मभ्यम्।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे भ्यस् आने पर भ्यस् को अभ्यम् आदेश हो।

युष्मद् अभ्यम् होने पर 'शेषे लोपः' से टि संज्ञक अद् का लोप होकर युष् अभ्यम् = युष्मभ्यम्।

पंचमी एकवचन में युष्मद् + ङसि होने पर

३२४. एकवचनस्य च। ७। १। ३२।

आभ्यां ङसेरत्। त्वत्। मत्।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे ङसि विभक्ति प्रत्यय को 'अत्' आदेश होता है।

युष्मद् + अत् होने पर 'न विभक्तौ तुस्माः' से त् का लोप नहीं होगा। 'त्वमावेकवचने' से 'युष्म्' के स्थान पर त्व आदेश होगा— त्व अद् अत्। 'शेषे लोपः' से टि 'अद्' का लोप— त्व अत्। 'अतो गुणे' से त्व के अ और अत् के अ के स्थान पर पररूप अ आदेश होकर—त्वत्।

पंचमी बहुवचन में युष्मद् भ्यस् होने पर भ्यस् को अत् आदेश करने के लिये सूत्र है—

३२५. पंचम्या अत् ७। १। ३१।

आभ्यां पंचम्या भ्यसोऽत् स्यात्। युष्मत्। अस्मत्।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे पंचमी के भ्यस् को 'अत्' आदेश हो।

'युष्मद् भ्यस्' में भ्यस् को अत् होकर—युष्मद् अत्। अत् के त् को 'न विभक्तौ तुस्माः' से इत्संज्ञा नहीं होगी। 'शेषे लोपः' से युष्मद् की टि 'अद्' का लोप— युष्म अत्=युष्मत्। त् को विकल्प से द् होकर युष्मद् रूप भी होगा।

षष्ठी एकवचन में युष्मद् + डस् होने पर 'त्वमावेकवचने' प्राप्त होगा किन्तु उसके अपवाद के रूप में अग्रिम सूत्र से 'तव' होगा।

३२६. तवममौ डसि। ७। २। ६६।

अनयोर्मपर्यन्तस्य तवममौ स्तो डसि।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे डस् होने पर उनके मपर्यन्त भाग (क्रमशः युष्म और अस्म) के स्थान पर 'तव' और 'मम' आदेश हो।

युष्मद् + डस् को तव अद् डस् हुआ। अब डस् के स्थान पर अश् आदेश करने के लिये सूत्र है—

३२७. युष्मदस्मदभ्यां डसोऽश्। ७। १। २७।

युष्मदस्मदभ्यां परस्य डसोऽशादेशः स्यात् तव। मम। युवयोः। आवयोः।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे डस् आने पर डस् को अश् आदेश हो।

डस् को अश् आदेश करने पर—तव अद् अश्। अश् में श् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप— तव अद् अ। 'शेषे लोपः' से अद् का लोप होने पर— तव अ। 'अतो गुणे' से अ + अ को पररूप एकादेश अ होने पर — तव।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में युष्मद् + ओस् होने पर 'युवावौ द्विवचने' से मपर्यन्त भाग को युव आदेश हुआ— युव ओस्। 'योऽचि' सूत्र से द को य् आदेश हुआ— युव अय् ओस्। 'अतो गुणे' से युव के अ और उससे परवर्ती अ दोनों के स्थान पर पररूप अ आदेश होकर— युवय् ओस् = युवयोस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर— युवयोः।

षष्ठी बहुवचन में युष्मद् + आम्।

३२८. साम आकम्। ७। १। ३३।

आभ्यां परस्य साम आकम् स्यात्। युष्माकम्। अस्माकम्। त्वयि, मयि। युवयोः, आवयोः। युष्मासु, अस्मासु।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे साम् को आकम् आदेश हो।

(यहाँ साम् इसलिये कहा गया है कि 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' से अकारान्त सर्वनाम से परे आम् को सुट् का आगम करने पर सुट् + आम् = साम् होता है। युष्मद् और अस्मद् हलन्त हैं अतः यहाँ सुट् आगम नहीं होगा। यहाँ साम् इसलिये कहा गया है कि यदि आगे भी सुट् हो तो साम् को भी आकम् आदेश हो।)

युष्मद् आम् को 'युष्मद् आकम्' हुआ 'शेषे लोपः' से टि अद् का लोप करने पर — युष्म् आकम् = युष्माकम् यदि 'युष्मद् आकम्' में अन्तिम द् का लोप माना जाय तो युष्म आकम्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ करने पर भी— युष्माकम्।

सप्तमी एकवचन में युष्मद् + डि होने पर ड् की इत्संज्ञा और लोप होने पर— युष्मद् + इ। 'त्वमावेकवचने' से मपर्यन्त युष्म् को त्व आदेश करने पर— त्व अद् इ। 'योऽचि' से अद् के द् को य् आदेश— त्व अय इ। 'अतो गुणे' से त्व के अ और उससे परवर्ती अ के स्थान पर पररूप एकादेश अ करने पर— त्वय् इ = त्वयि।

सप्तमी बहुवचन में युष्मद् + सुप् । प् की इत्संज्ञा और लोप होने पर युष्मद् सु । 'युष्मदस्मदोरनादेशे' से द को आ— युष्म आ सु । 'अकः सवर्णे' से दीर्घ करने पर— युष्मासु ।

कतिपय विभक्तियों में युष्मद् को वाम् और अस्मद् को नौ आदेश करने का नियम—

३२६. युष्मदस्मदोः षष्ठी—चतुर्थी—द्वितीयास्थयोर्वान्नावौ । ८ । १ । २० ।

पदात्परयोरपादादौ स्थितयोः षष्ठ्यादि विशिष्टयोर्वान्नावौ इत्यादेशौ स्तः ।

पद से परे आये हुए किन्तु पाद (किसी पद्य के चरण) के आदि में न आये हुए युष्मद् और अस्मद् शब्दों के षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया (द्विवचन) में क्रमशः आवाम् और नौ आदेश हो ।

(आगे आने वाले तीन सूक्तों में षष्ठी, चतुर्थी, द्वितीया के एकवचन और बहुवचन के विषय में आदेश के नियम दिये गये हैं, अतएव यह नियम केवल द्विवचन में लागू होता है ।) इस प्रकार युष्मद् का द्वितीया द्विवचन में युवाम् होता है उसके स्थान पर 'वाम्' होगा चतुर्थी द्विवचन में युवाभ्याम् होता है उसके स्थान पर वाम् होगा । षष्ठी द्विवचन में युवयोः होता है उसके स्थान पर भी वाम् होगा ।

षष्ठी, चतुर्थी, द्वितीया के बहुवचन में युष्मद् को वस् और अस्मद् को नस् करने का नियम—

३३०. बहुवचनस्य वस्नसौ । ८ । १ । २१ ।

उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादि बहुवचनान्तयोर्वस्नसौ स्तः ।

किसी पद के बाद आये हुए और किसी पद्य के पाद के आदि में न आने पर षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया के बहुवचन वाले युष्मद् और अस्मद् शब्दों को क्रमशः वस् और नस् आदेश हो ।

षष्ठी बहुवचन में युष्माकम् के स्थान पर वस्-रुत्व, विसर्ग के बाद-वः
चतुर्थी बहुवचन में युष्मभ्यम् के स्थान पर भी-वः।

द्वितीया बहुवचन में युष्मान् के स्थान पर भी-वः।

षष्ठी और चतुर्थी के एकवचन में युष्मद् को 'ते' और अस्मद् को 'मे' करने का नियम—

३३१. तेमयावेकवचनस्य । ८ । १ । २२ ।

उक्तविषयोरनयोः षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्तयोस्तेमे एतौ स्तः ।

किसी पद के बाद आने पर, किन्तु पद्य के पाद के आदि में न आये हुए षष्ठी और चतुर्थी के एकवचन वाले युष्मद् को 'ते' तथा अस्मद् को 'मे' आदेश होते हैं।

इस प्रकार षष्ठी एकवचन में तव के स्थान पर 'ते' होता है। चतुर्थी एकवचन में भी 'तुभ्यम्' को 'ते' होता है।

द्वितीया के एकवचन में युष्मद् को 'त्वा' और अस्मद् को 'मा' करने का नियम—

३३२. त्वामो द्वितीयायाः । ८ । १ । २३ ।

द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वा मा इत्यादेशौ स्तः ।

किसी पद के बाद आने पर, किन्तु किसी पद्य के पाद के आदि में न होने पर द्वितीया के एकवचन वाले युष्मद् को 'त्वा' तथा अस्मद् को 'मा' आदेश होते हैं।

द्वितीया एकवचन में युष्मद् का रूप त्वाम् होता है।

त्वाम् के स्थान पर 'त्वा' भी हो जाता है।

युष्मद् के रूप इस प्रकार हुए—

प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्	"	युष्मान्
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
चतुर्थी	तुभ्यम्	"	युष्मभ्यम्
पंचमी	त्वत्, त्वद्	"	युष्मत्, युष्मद्
षष्ठी	तव	युवयोः	युष्माकम्
सप्तमी	त्वयि	"	युष्मासु

पद के बाद, अपादादि प्रयोग में होने वाले आदेश

द्वितीया	त्वा	वाम्	वः
चतुर्थी	ते	"	"
षष्ठी	"	"	"

अस्मद् शब्द की रूपसिद्धि

अस्मद् शब्द की रूपसिद्धि पूर्णतः 'युष्मद्' शब्द के समान ही है। यहाँ सुविधा और सूत्रों का पुनः अभ्यास कराने के प्रयोजन से अस्मद् की रूपसिद्धि पृथक् दी जा रही है।

प्रथमा एकवचन में अस्मद् + सु होने पर 'डे प्रथमयोरम्' सूत्र से सु को अम् आदेश होकर अस्मद् + अम्।

'न विभक्तौ तुस्माः' से म् का लोप नहीं होगा।

'त्वाहौ सौ' से अस्मद् में अस्म् को अह आदेश होगा—

अह अद् अम्। 'शेषे लोपः' से टिसंज्ञक अद् का लोप हो जायगा—

अम्। 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश करने पर—अहम्।

प्रथमा द्विवचन में अस्मद् + औ होने पर 'डे प्रथमयोरम्' से औ को अम्

होगा—अस्मद् + अम्। 'युवावौ द्विवचने' से अस्मद् के मपर्यन्त भाग अस्म्

स्थान पर आव आदेश आव अद् अम् । 'प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्' से अद् के द के स्थान पर आ आदेश—आव अ आ अम् । 'अतो गुणे' से आव के अन्त में आये अ और इससे परे आये अ दोनों के स्थान पर पररूप अ आदेश करने पर—आव आ अम् । 'अकः सवर्णे दीर्घः' से अ + आ = आ करने पर आवा अम् । 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप करने पर—आवाम् ।

प्रथमा बहुवचन में अस्मद्—जस् होने पर 'ङे' प्रथमयोरम् से जस् को अम्—अस्मद् अम् । 'यूयवयौ जसि' से अस्मद् में अस् को वय आदेश हुआ—वय अद् अम् । 'शेषे लोपः' से टिसंज्ञक अद् का लोप करने पर—वय अम् । 'अमि पूर्वः' पूर्वरूप एकादेश कर—वयम् ।

द्वितीया के एकवचन में अस्मद् + अम् होने पर 'त्वमावेकवचने' सूत्र से अस्मद् के मपर्यन्त भाग अस् को म आदेश होगा—म अद् अम् । 'द्वितीयायाञ्च' सूत्र से अस्मद् के द को आ आदेश—म अ आ अम् । 'अतो गुणे' से म के अ और उससे परवर्ती अ के स्थान पर पररूप एकादेश 'अ' होगा—म आ अम् । 'अकः सवर्णे दीर्घः' से सवर्ण दीर्घ—मा अम् । 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर—माम् ।

द्वितीया द्विवचन में अस्मद् + औद् होने पर 'ङे प्रथमयोरम्' से औद् को अम्—अस्मद् अम् । 'युवावौ द्विवचने' से अस्मद् के मपर्यन्त भाग 'अस्' के स्थान पर आव आदेश होकर—आव अद् अम् । 'द्वितीयाञ्च' से अद् में द को आ—आव अ आ अम् । 'अतो गुणे' से आव के अन्तिम अ और उससे परवर्ती अ के स्थान पर पररूप एकादेश हुआ—आव आ अम् । 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ एकादेश अ + आ = आ—आवा अम् । 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर—आवाम् ।

द्वितीया बहुवचन में अस्मद् + शस् । 'लशक्वतद्धिते' से श् की इत्संज्ञा और लोप—अस्मद् अस् । 'ङे प्रथमयोरम्' से अस् को अम् होना चाहिये, किन्तु उसका अपवाद सूत्र है 'शसो नः' । 'शसो नः' से अस् के आदि अ को न् आदेश—अस्मद् न् स् । 'द्वितीयायाञ्च' सूत्र से द को आ आदेश होकर—अस्म आ न् स् । 'अकः सवर्णे दीर्घः' से अ + आ = आ करने पर—अस्मान् स् । 'संयोगान्तस्य लोपः' से स् का लोप करने पर—अस्मान् ।

तृतीया एकवचनमें अस्मद् + टा होने पर 'चुटू' से ट की इत्संज्ञा और लोप होने पर—अस्मद् + आ। 'त्वमावेकवचने' से अस्मद् के मपर्यन्त भाग अस्म के स्थान पर म आदेश करने पर—म अद आ। 'योऽचि' से द को य् आदेश—म अय् आ। 'अतो गुणे' से म के अ और अय् के अ के स्थान पर पररूप एकादेश—मय् आ = मया।

तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में अस्मद्भ्याम्। 'युवावै द्विवचने' से अस्मद् के मपर्यन्त भाग 'अस्म्' के स्थान पर आव आदेश—आव अद्भ्याम्। 'युष्मदस्मदोरनादेशे' से अनादेश वाली हलादि विभक्ति परे रहते अस्मद् के द के स्थान पर आ आदेश होगा—आव अ आ भ्याम्। आव के अ और उससे परे आये अ के स्थान पर 'अतो गुणे' से पररूप एकादेश हुआ—आव आभ्याम्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से अ + आ = आ एकादेश करने पर सिद्ध हुआ—आवाभ्याम्।

तृतीया बहुवचन में अस्मद् + भिस् होने पर 'युष्मदस्मदोरनोदशे' सूत्र से द को आ आदेश—अस्म आ भिस्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ एकादेश करने पर—अस्माभिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग पर—अस्माभिः।

चतुर्थी एकवचन में अस्मद् + डे होने पर 'डे प्रथमयोरम्' से डे को अम् आदेश होगा—अस्मद् अम्। 'तुम्यमह्यौडयि' से अस्मद् के मपर्यन्त भाग अस्म के स्थान पर 'मह्य' आदेश होने पर—मह्य अद् अम्। 'शेषे लोपः' से टि अद् का लोप करने पर—मह्य अम्। 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश करने पर—मह्यम्।

चतुर्थी बहुवचन में अस्मद् + भ्यम् होने पर 'भ्यसोऽभ्यम्' सूत्र से भ्यस् को भ्यम्—अस्मद्भ्यम्। 'शेषे लोपः' से टिसंज्ञक अद् का लोप होने पर—अस्मद्भ्यम् = अस्मभ्यम्।

पञ्चमी एकवचन में अस्मद् + डसि होने पर 'एकवचनस्य च' से डसि को अत् आदेश होगा—अस्मद् + अत्। 'न विभक्तौ तुस्माः' से त् का लोप नहीं

होगा। 'त्वमावेकवचने' से अस्मद् के मपर्यन्त भाग 'अस्म्' के स्थान पर म आदेश होगा—म अदअत्। 'शेषे लोपः' से टि अद् का लोप होने पर— म अत्। 'अतो गुणे' से म के अ से परे अ आने पर पररूप एकादेश होकर—मत्।

पञ्चमी बहुवचन में अस्मद् भ्यस् होने पर 'पञ्चम्या अत्' से भ्यस् को अत् आदेश होगा—अस्मद् अत्। 'न विभक्तौ तुस्माः' से त् का लोप नहीं होगा। 'शेषे लोपः' से अस्मद् की टि अद् का लोप हो गया—अस्म् अत्=अस्मत्।

षष्ठी एकवचन में अस्मद् + डस् होने पर 'तवममौ डसि' से अस्म् को मम आदेश होगा। 'युष्मदस्मदभ्यां डसोऽश्' सूत्र से डस् को अश् आदेश होकर मम अद् अश्। 'हलन्त्यम्' से श् की इत्संज्ञा और लोप होने पर— मम अद् अ। 'शेषे लोपः' से अद् का लोप होकर— मम अ। 'अतो गुणे' से पररूप एकादेश करने पर—मम।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में अस्मद् + ओस् होने पर 'युवावौ द्विवचने' सूत्र से मपर्यन्त भाग अस्म् को आव आदेश होगा—आव अद् ओस्। 'योऽचि' से द् को य् होगा—आव अय् ओस्। 'अतो गुणे' से आव के अन्त में आये अ और अय के आदि में आये अ के स्थान पर पररूप एकादेश अ—आवय् ओस् = आवयोस्। 'ससजुषोः रुः' से रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—आवयोः।

षष्ठी बहुवचन में अस्मद् + आम् होने पर 'साम आकम्' सूत्र से साम (सुट आगम सहित आम) के स्थान पर आकम् आदेश होगा—अस्मद् आकम्। 'शेषे लोपः' से अस्मद् की टि 'अद्' का लोप होकर—अस्म् आकम् = अस्माकम्।

सप्तमी एकवचन में अस्मद् + डि होने पर 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा और लोप होकर—अस्मद् इ। 'त्वमावेकवचने' से अस्मद् के मपर्यन्त भाग अस्म् को म आदेश हुआ—म अद् इ। 'योऽचि' से द् को य् हुआ—म अय् इ। 'अतो गुणे' से म् के अ और अय् के अ के स्थान पर पररूप एकादेश अ होगा—मय इ = मयि।

सप्तमी बहुवचन में अस्मद् + सुप्। प् की इत्संज्ञा और लोप होने

पर-अस्मद् सु। 'युष्मदस्मदोनादेशे' से द् को आ होगा-अस्म आ सु। 'अकः सर्वर्णे दीर्घ' से दीर्घ एकादेश करने पर-अस्मासु।

अस्मद् को भी किसी पद के परे आने पर और किसी पद्य के पाद के आरम्भ में न होने पर षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया के द्विवचन में 'युष्मदस्मदोः षष्ठी-चतुर्थी-द्वितीयास्थयोर्वान्नावौ' सूत्र से नौ होता है। षष्ठी, चतुर्थी, द्वितीया के बहुवचन में उपर्युक्त स्थिति में ही अस्मद् को नस् = नः होता है। तथा षष्ठी, चतुर्थी के एकवचन में उपर्युक्त स्थिति में 'तेमयावेकवचनस्य' से 'मे' आदेश होता है तथा द्वितीया के एकवचन में 'मा' होता है।

अस्मद् के रूप इस प्रकार होंगे।

प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम्	"	अस्मान्
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
चतुर्थी	मह्यम्	"	अस्मभ्यम्
पंचमी	मत्, मद्	"	अस्मत्, अस्मद्
षष्ठी	मम	आवयोः	अस्माकम्
सप्तमी	मयि	"	अस्मासु

पद के बाद और अपादादि प्रयोग में होने वाले आदेश—

द्वितीया	मा	नौ	नः
चतुर्थी	मे	"	"
षष्ठी	"	"	"

तकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द 'महत्'

महत् (= बड़ा) तकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द है। यह उणादिसूत्र से अप्रत्ययान्त कहा गया है किन्तु शतृप्रत्यय के समान भी अतिदेश किया गया है। शतृ उगित् है। उगित् का अर्थ है जिसमें उक् की इत्संज्ञा हो। उक् प्रत्याहार में उ ऋ लृ तीन वर्ण आते हैं, जिनमें उ, ऋ, लृ, की इत्संज्ञा होती है, वे उगित हैं। शतृ में ऋ की इत्संज्ञा होती है, अतः उगित् है।

प्रथमा एकवचन में महत् + सु। उ की इत्संज्ञा और लोप होने पर महत् + स्। शतृवत् अतिदेश होने के कारण महत् भी उगित माना जायगा, तब यह सूत्र प्राप्त होगा—

(उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः (सूत्र २८६) यदि सर्वनामस्थान अर्थात् सु औ जस् अम् औट् परे हो तो धातु से भिन्न उगित्, नकार के लोप वाली अञ्चु धातु को नुम् आगम हो।)

महत् को नुम् का आगम होता है। 'मिदचोऽन्त्यात्परः' सूत्र से महत् के अन्तिम अच् ह के अ से परे नुम् होगा— महनुम् त् स्। नुम् में उ और म् का लोप करने पर— महन् त्+स्। अब उपधा को दीर्घ करने के लिये सूत्र है—

३४२. सान्तमहतः संयोगस्य । ६ । ४ । १० ।

सान्तसंयोगस्य महत्तश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घः स्यादसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने । महान्, महान्तौ, महान्तः । हे महन् । महद्भ्याम् ।

यदि सम्बुद्धि को छोड़कर सर्वनामस्थान (= सु, औ, जस्, अम्, औट्) परे हो तो सकारान्त संयोग की उपधा को और महत् शब्द के नकार की उपधा को दीर्घ हो।

'महन्त् स्' में न् की उपधा अ को दीर्घ करने पर 'महान् त् स्' हलङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्पृक्तं हल् से सु के स् का लोप हुआ— महान् त् । 'संयोगान्तस्य लोपः' से त् का लोप होकर—महान् ।

प्रथमा द्विवचन में महत् औ । 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से नुम् का आगम, 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से महत् के अन्तिम अच् ह के अ से परे नुम् होगा—

महनुम् त् औ नुम् में उ और म् का लोप होकर— मह न् त् औ । 'सान्तमहतः संयोगस्य' सूत्र से महत् शब्द के न् की उपधा को दीर्घ करने पर— महान् त् औ 'नश्चापदान्तस्य झलि' से न् को अनुस्वार, 'अनुस्वारस्य ययि' परसवर्णः से पुनः त् का सवर्ण न् होने पर—महान्तौ ।

प्रथमा बहुवचन में महत् + जस् । 'चुटू' से ज् की इत्संज्ञा और लोप होने पर — महत् + अस् । 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से नुम् का आगम, 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से महत् के अन्तिम अच् से परे नुम् करने पर— मह नुम् त् अस् । नुम् में उ और म् का लोप करने पर— मह न् त् अस् । मह न् त् अस् । 'सान्तमहतः संयोगस्य' सूत्र से महत् शब्द के न् की उपधा को दीर्घ करने पर— महान् त् अस् । 'नश्चापदान्तस्य झलि' से न् को अनुस्वार, 'अनुस्वारस्य ययि' परसवर्णः से परसवर्ण न ही करने पर—महान्तस् । 'ससजुषोः रुः' से स् को रु । रु को र् । र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—महान्तः ।

सम्बोधन के एकवचन में हे महत् + सु । सु में उ की इत्संज्ञा और लोप—हे महत् स् । 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से नुम् का आगम हुआ—जो 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से अन्तिम अच् से परे होगा—हे महनुम् त् स् । नुम् में उ और म् का लोप— हे महन् त् स् । अब यहाँ 'सान्तमहतः संयोगस्य' नहीं लागू होगा, क्योंकि सम्बुद्धि परे रहते वह लागू होता ही नहीं—अतः—हे महन् त् स् में स् का 'हलङ्याभ्यो दीर्घात्सुतिस्पृक्तं हल्' से लोप— हे महन् त् । त् का 'संयोगान्तस्य लोपः' करने पर—हे महन् ।

संबोधन के द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा के समान ही—हे महान्तौ, हे महान्तः ।

द्वितीया एकवचन में— महत् + अम् । 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से नुम् का आगम, जो 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से अन्तिम अच् से परे होगा—मह नुम् त् अम् । नुम् में उ और म् का लोप होने पर—महन् त् अम् । 'सान्तमहतः संयोगस्य' से न् की उपधा को दीर्घ करने पर—महान्तम् ।

द्वितीया द्विवचन में महत् + औट् । 'हलन्त्यम्' से ट् की इत्संज्ञा और

लोप होने पर—महत् औ। अब प्रथमा द्विवचन के समान ही 'उगिदचां सर्वनाम-स्थानेऽधातोः' से नुम्—महनुम् त् औ। नुम् में उ और म् का लोप—महनत् औ। 'सान्तमहतः संयोगस्य' से न् की उपधा को दीर्घ—महान् त् औ। 'नश्चापदान्तस्य झलि' से न् को अनुस्वार, 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' से अनुस्वार को पुनः न् करने पर—महान्तौ।

द्वितीया बहुवचन में महत् + शस्। शस् में श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा। महत् अस्। सर्वनामस्थान परे न होने से नुम् नहीं होगा—महतस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—महतः।

तृतीया एकवचन में महत् + टा। टा में ट् की 'चुटू' से इत्संज्ञा और तब लोप करने पर—महत् + आ = महता।

तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में—महत्भ्याम्। त् को 'झलां जशोऽन्ते' से द् होकर—महद्भ्याम्। तृतीया बहुवचन में भी महत् + भिस्। 'झलां जश'० से त् को द्—महादिभस्। स् को 'ससजुषोः रुः' से रु रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—महदिभः।

चतुर्थी एकवचन में महत् + डे। 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा ओर लोप—महत् + ए = महते।

चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में—महत्भ्याम्। 'झलां जश् झशि' से त् को द्—महद्भ्यस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—महद्भ्यः।

पञ्चमी के एकवचन में महत् + डसि में ड् और इ का लोप होनेपर महत् + अस् तथा षष्ठी एकवचन में महत् + डस् का लोप होनेपर भी महत् + अस् होता है। महत् + अस् = महतस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग—महतः।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में—महत् + ओस् = महतोस्। 'ससजुषोः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग—महतोः।

षष्ठी बहुवचन में महत् + आम् = महताम् । सप्तमी एकवचन में महत् + डि । डि में ड् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप करने पर—महत् + इ = महति ।

सप्तमी बहुवचन में—महत् + सुप् । प की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप करने पर—महत्सु ।

'महत्' के रूप इस प्रकार हुए—

प्रथमा	महान्	महान्तौ	महान्तः
द्वितीया	महान्तम्	"	महतः
तृतीया	महता	महदभ्याम्	महदिभः
चतुर्थी	महते	"	महदभ्यः
पंचमी	महतः	"	"
षष्ठी	"	महतोः	महताम्
सप्तमी	महति	"	महत्सु
संबोधन	हे महन्	हे महान्तौ	हे महान्तः ।

सकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द 'विद्वस्'

विद् (जानना) धातु से शतृ प्रत्यय करने पर 'विदेः शतुर्वसुः' सूत्र से शतृ को 'वसु' आदेश करने पर विद् वसु । उ की इत्संज्ञा और लोप करने पर विद्वस् बना ।

प्रथमा एकवचन में विद्वस् + सु होने पर सु में उ की इत्संज्ञा और लोप होकर—विद्वस् स् । विद्वस् शतृप्रत्ययान्त है, अतः उगित (उक् = उ, ऋ, लृ की इत्संज्ञा वाला) है । 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से विद्वस् को नुम् हुआ, 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से ये विद्वस् के अन्तिम अच् से परे होगा—विद्व नुम् स् स् । नुम् में उ और म का लोप—विद्व न् स् स् । 'सान्तमहतः संयोगस्य' सूत्र से न की उपधा को दीर्घ हो गया—विद्वान् स् स् । सु के स का 'हलङ्याभ्यो दीर्घात्

सुतिस्पृक्तं हल्' से लोप करने पर—विद्वान्स्। 'संयोगान्तस्य लोपः' से अन्तिम स् का लोप करने पर सिद्ध हुआ—विद्वान्।

प्रथमा द्विवचन में विद्वस् + औ। 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से नुम् का आगम, 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से विद्वस् के अन्तिम अच् से परे नुम्—विद्व नुम् स् औ। नुम् में उ और म् का लोप होकर—विद्व न् स् औ। 'सान्तमहतः संयोगस्य' से न् की उपधा को दीर्घ करने पर—विद्वान् स् औ। 'नश्चापदान्तस्य झलि' से न् को अनुस्वार करने पर—विद्वांसौ।

प्रथमा बहुवचन में—विद्वस् + जस्। जस् में ज् की 'चुटू' से इत्संज्ञा और लोप होने पर—विद्वस् + अस्। 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से नुम् का आगम होगा। 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से अन्तिम अच् से परे नुम् करने पर विद्व नुम् स् अस्। नुम् में उ और म् का लोप होकर—विद्व स् अस्। 'सान्तमहतः संयोगस्य' से न् की उपधा को दीर्घ होगा—विद्वान् स् अस्। 'नश्चापदान्तस्य झलि' से न् को अनुस्वार—विद्वांसस्। 'ससजुषोः रु' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—विद्वांसः।

द्वितीया एकवचन में विद्वस् + अम्। 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से विद्वस् को नुम् आगम, 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से अन्तिम अच् से परे होगा—विद्व नुम् स् अम्। नुम् में उ और म् का लोप करने पर विद्वन्स् अम्। 'सान्तमहतः संयोगस्य' से न् की उपधा को दीर्घ करने पर—विद्वान्स् अम्। 'नश्चापदान्तस्य झलि' से न् को अनुस्वार करने पर—विद्वांसम्।

द्वितीया द्विवचन में प्रथमा द्विवचन के समान ही विद्वस् औ। विद्व नुम् स् औ। विद्व न् स् औ। विद्वान् स् औ से विद्वांसौ।

द्वितीया बहुवचन में विद्वस्+शस् होने पर 'लशक्तदिते' से श् की इत्संज्ञा और लोप होने पर—विद्वस् अस्।

३५३. वसोः सम्प्रसारणम् । ६ । ४ । १३१

वस्वन्तस्य भस्य सम्प्रसारणं स्यात् । विदुषः ।

'वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः' इति दः । विद्वद्भ्याम् ।

वसु प्रत्यय से अन्त होने वाले भसंज्ञक अंग का सम्प्रसारण होवे ।

विद्वस् शब्द वसु प्रत्ययान्त है। 'यचि भम्' सूत्र १६५ के अनुसार यदि सर्वनामस्थान संज्ञा वाले सु और जस् अम् और औट् को छोड़कर सु से लेकर कप् प्रत्यय तक के अजादि या यकारादि प्रत्यय परें हो तो पूर्वशब्दसमुदाय को भ संज्ञा होती है। यहाँ भी द्वितीया बहुवचन का शस् (अस्) सर्वनामस्थान सुप् प्रत्यय नहीं है, अजादि है, अतः विद्वस् की भसंज्ञा होती है। अतः विद्वस् में दूसरे व का सम्प्रसारण 'उ' होगा विद् उ अ स् अस्। विदु अ स् अस्। 'सम्प्रसारणाच्च' (सूत्र २५८) से सम्प्रसारण के बाद अच् आने पर पूर्वरूप एकादेश होता है अतः उ + अ = उ होकर विदुस् अस् = विदुसस्। 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को ष करने पर— विदुषस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर विदुषः।

तृतीया एकवचन में विद्वस् + टा। 'चुटू' से ट् की इत्संज्ञा और लोप करने पर—विद्वस् आ। 'वसोः सम्प्रसारणम्' से विद्वस् के दूसरे व को सम्प्रसारण उ—विद् उ अ स् आ = विदु अ स् आ। 'सम्प्रसारणाच्च' सूत्र से उ और अ को पूर्वरूप एकादेश करने पर—विदुस् आ। 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को ष करने पर रूप होगा—विदुषा।

तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में विद्वस् + भ्याम् होने पर। (२६२. वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः । ८। २। ७२

पद के अन्त में स् से अन्त होने वाला वसुप्रत्ययान्त शब्द हो उसे और स्रंसु, ध्वंसु, अनडुह शब्दों (अन्तिम वर्ण) को द आदेश होता है।)

'वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः' सूत्र से विद्वस् के स् को द होगा— विद्वद्भ्याम्।

तृतीया बहुवचन में विद्वस् भिस् होने पर 'वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः' से स् को द आदेश होगा— विद्वद्भिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर— विद्वद्भिः।

चतुर्थी एकवचन में विद्वस् + डे। 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा और लोप करने पर— विद्वस् + ए। 'वसोः सम्प्रसारणम्' से विद्वस् के दूसरे व को सम्प्रसारण उ—विद् उ अ स् + ए। 'सम्प्रसारणाच्च' से उ + अ को पूर्वरूप

एकादेश-करने पर-विदुस् ए। 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को ष करने पर-विदुषे चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में विद्वस् + भ्यस्। 'वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहांदः' से स् को द करने पर-विद्वद्भ्यस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र। र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर- विद्वद्भ्यः।

पञ्चमी एकवचन में विद्वस् + डसि और षष्ठी एकवचन में विद्वस् + डस् होने पर डसि में ड् और इ का तथा डस् में ड् का लोप करने पर- विद्वस् + अस्। 'वसोः सम्प्रसारणम्' से विद्वस् के दूसरे व को सम्प्रसारण उ होगा-विदु अस् अस्। -'सम्प्रसारणाच्च' से उ + अ को पूर्वरूप उ एकादेश होगा-विदुसस्। 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को ष करने पर- विदुषस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र। र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर-विदुषः।

षष्ठी द्विवचन और सप्तमी द्विवचन में- विद्वस् ओस्। 'वसोः सम्प्रसारणम्' से विद्वस् के दूसरे व को सम्प्रसारण उ करने पर विदु अस् ओस्। 'सम्प्रसारणाच्च' से उ और अ को पूर्वरूप एकादेश विदुस् ओस्। विदुस् के स् को 'आदेशप्रत्ययोः' से ष करने पर-विदुषोस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र। र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर-विदुषोः।

षष्ठी बहुवचन में विद्वस् + आम्। 'वसोः सम्प्रसारणम्' से विद्वस् के दूसरे व को सम्प्रसारण उ-विदु अस् आम्। 'सम्प्रसारणाच्च' से उ और अ के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश उ करने पर विदुस् आम्। 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को स् होकर-विदुषाम्।

सप्तमी एकवचन में विद्वस् + डि। 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा और लोप करने पर-विद्वस् + इ। 'वसोः सम्प्रसारणम्' से विद्वस् के दूसरे व को उ-विदु अस् इ। 'सम्प्रसारणाच्च' से उ और अ के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश उ करने पर- विदुस् इ। 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को ष करने के बाद सिद्ध हुआ-विदुषि।

सप्तमी बहुवचन में विद्वस् + सुप्। प की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप करने पर-विद्वस् सु। 'वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहांदः' से विद्वस् के स् को द-विद्वद् सु। 'खरि च' से द को त् करने पर-विद्वत्सु।

संबोधन के एकवचन में हे विद्वस् सु। सु में उ की इत्संज्ञा और लोप करने पर—हे विद्वस् स्। 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से नुम् का आगम् 'मिदचोऽन्यात्परः' से अन्तिम अच् के बाद नुम् होगा—हे विद्व नुम् स् स्। नुम् में उ और म् का लोप होने पर—हे विद्वन् स् स्। 'हलङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्वपृक्तं हल्' से सु के स् का लोप करने और 'संयोगान्तस्य लोपः' से विद्वन् स् के स का लोप करने पर हे विद्वन्।

संबोधन द्विवचन एवं बहुवचन में प्रथमा के समान ही हे विद्वांसौ, हे विद्वांसः।

सकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द विद्वस् के रूप इस प्रकार हुए —

प्रथमा	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
द्वितीया	विद्वांसम्	"	विदुषः
तृतीया	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
चतुर्थी	विदुषे	"	विद्वद्भ्यः
पंचमी	विदुषः	"	"
षष्ठी	"	विदुषोः	विदुषाम्
सप्तमी	विदुषि	"	विद्वत्सु
संबोधन	हे विद्वन्	हे विद्वांसौ	हे विद्वांसः।

हलन्त-स्त्रीलिङ्ग-प्रकरणम्

ह को ध् करने के विषय में सूत्र—

३५६. नहो धः । ८ । २ । ३४

नह धातु के ह से परे यदि झल हो अथवा यदि वह पद के अन्त में आया हो तो ह को ध् हो जाता है।

(नहः = नह + षष्ठी, नह के स्थान पर, अर्थात् नह के ह के स्थान पर धः (प्रथमा) = ध् आदेश हो। 'झलो झलि' सूत्र से झलि और 'स्कोः संयोगान्ते च' से 'अन्ते' लेकर अर्थ किया जायगा।)

हकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द उपानह कैसे बना है इसे और स्पष्ट करने के लिये सूत्र है—

३६०. नहि—वृति—वृषि—व्यधि—रुचि—सहि—तनिषु क्वौ ।

६ । ३ । ११५ ।

क्विबन्तेषु पूर्वपदस्य दीर्घः । उपानत्, उपानद् । उपानहौ । उपानत्सु ।

यदि क्विप् प्रत्यय से अन्त होने वाली नह, वृत्, वृष, व्यध, रुच, सह और तन् धातु परे हो तो उनके पूर्व पद के अन्तिम अच् को दीर्घ हो जाता है।

उपनह से क्विप् प्रत्यय करने पर क्विप् का लोप हो जाता है और उपनह बना, अब क्विप् प्रत्यय का लोप होने पर भी 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' नियम से प्रत्यय का लक्षण मानकर 'नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ' से नह के पूर्वपद के अन्तिम अच् अ को दीर्घ करने पर—उपानह बना। उपानह का अर्थ है जूता।

हकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द उपानह

प्रथमा एकवचन में उपानह + सु होने पर, सु में उ की इत्संज्ञा और लोप होने पर—उपानह स्।

हलङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्पृक्तं हल् से अपृक्त स् का लोप हुआ—उपानह। 'नहो धः' से ह को ध—उपानध। 'झलां जशोऽन्ते' से झल् को जश् अर्थात् ध को द करने पर—उपानद्। 'वाऽवसाने' से विकल्प से झल् को चर् अर्थात् ध को त करने पर—उपानत्।

प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में उपानह + औ से सीधे—सीधे—उपानहौ हो जायगा, चूंकि उपानह में नह का ह न तो पदान्त है और न ही उसके बाद झल् है, अतः ह को ध नहीं होगा।

प्रथमा बहुवचन में उपानह + अस् = उपानहस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—उपानहः।

द्वितीया एकवचन में उपानह + अम् = उपानहम्।

द्वितीया बहुवचन में—उपानह + शस् होने पर श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप करने पर उपानहस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—उपानहः।

तृतीया एकवचन में उपानह + टा। 'चुटू' से ट् को इत्संज्ञा। ट् का लोप करने पर—उपानह + आ = उपानहा।

तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में उपानह + भ्याम्। 'नहो धः' से झल् से परे रहते ह को ध। उपानध्भ्याम्

'झलां जश् झशि' से झल् ध को जश् द आदेश हुआ—उपानद्भ्याम्।

तृतीया बहुवचन में उपानह भिस् होने पर 'नहो धः' से झल् परे रहते ह को ध, पुनः ध को 'झलां जश् झशि' से जश् वर्ण द होकर—उपानदिभस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—उपानदिभः।

चतुर्थी एकवचन में उपानह + डे। 'लशक्वचतद्धिते' से ङ् की इत्संज्ञा। ङ् का लोप करने पर—उपानहे।

चतुर्थी और पंचमी के बहुवचन में उपानह + भ्यस्। 'नहो धः' से ह को ध, 'झलां जश् झशि' से ध को द करने पर उपानद्भ्यस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र को विसर्ग करने पर—उपानद्भ्यः।

पंचमी एकवचन में उपानह + डसि। डसि में ड् और इ का लोप होने पर—उपानह + अस् = उपानहस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—उपानहः। इसी प्रकार षष्ठी एववचन में उपानह + डस् = उपानह अस् = उपानहस्—उपानहरु—उपानहः।

षष्ठी द्विवचन और सप्तमी द्विवचन में उपानह + ओस् = उपानहोस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग करने पर—उपानहोः।

षष्ठी बहुवचन में उपानह + आम् = उपानहाम्। सप्तमी एकवचन में उपानह + डि। 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा होने और फिर उसका लोप होने पर—उपानह इ=उपानहि। सप्तमी बहुवचन में उपानह + सुप्। प् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप—उपानह सु। 'नहो धः' से झल् परे रहते ह को ध्—उपानध् सु। 'झलां जश् झशि' से झल् वर्ण ध् को जश् वर्ण द् आदेश हुआ—उपानद् सु। 'खरि च' से खर् प्रत्याहार का वर्ण परे रहते झल् को चर् आदेश करने पर—उपानत् सु = उपानत्सु।

संबोधन के रूप प्रथमा के समान ही होते हैं—हे उपानद्, हे उपानत्। हे उपानहौ। हे उपानहः।

उपानह के रूप इस प्रकार हुए—

प्रथमा	उपानद् उपानत्	उपानहौ	उपानहः
द्वितीया	उपानहम्	"	"
तृतीया	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानदिभः
चतुर्थी	उपानहे	"	उपानद्भ्यः
पंचमी	उपानहः	"	"
षष्ठी	"	उपानहोः	उपानहाम्
सप्तमी	उपानहि	"	उपानत्सु
संबोधन	हे उपानद्, हे उपानत्	हे उपानहौ	हे उपानहः।

चकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द वाच्

वाच् शब्द वच् धातु से क्विप् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न है। यह स्त्रीलिङ्ग शब्द है।

प्रथमा एकवचन में वाच् + सु होने पर सु में उ की इत्संज्ञा और लोप करने पर—वाच् स्।

सुयुज् शब्द की रूपसिद्धि के संबन्ध में सूत्र आया है

चोः कुः। ८। २। ३०। (चवर्गस्य कवर्गः स्याद्भलि पदान्ते च।) अर्थात् झल् प्रत्याहार का वर्ण परे होने पर अथवा पद के अन्त में होने पर चवर्ग को कवर्ग आदेश हो।

वाच् स् में स् का 'हलङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्स्यपृक्तं हल्' से लोप होगा—वाच्। अब 'चोः कुः' सूत्र से पद के अन्त में च् को क् करने पर—वाक्। 'झलां जशोऽन्ते' से पद के अन्त में क् को ग्—वाग्। 'वाऽवसाने' से विकल्प से—वाक्।

प्रथमा द्विवचन में और द्वितीया द्विवचन में वाच् + औ = वाचौ।

प्रथमा बहुवचन में वाच् + जस् में ज् की 'चुटू' से इत्संज्ञा और लोप होने पर—वाच् + अस्। इसी प्रकार द्वितीया बहुवचन में वाच् + शस् में श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप होने पर वाच् + अस् = वाचस्। 'सराजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—वाचः।

द्वितीया एकवचन में वाच् + अम् = वाचम्।

तृतीया एकवचन में वाच् + टा। 'ट्' की 'चुटू' से इत्संज्ञा और लोप करने पर वाच् + आ = वाचा।

तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में वाच् + भ्याम्। 'चोः कुः' से झल् परे रहते च् को क्—वाक्भ्याम्। 'झलां जशोऽन्ते' से क् को ग् करने पर—वाग्भ्याम्।

तृतीया बहुवचन में वाच् + भिस्। 'चोः कुः' से च् को क्-वाक् भिस्। 'इलां जशोऽन्ते' से क् को ग् करने पर वाग्भिस्। 'ससजुषो रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर-वाग्भिः।

चतुर्थी एकवचन में वाच् + डे। 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा, लोप करने पर-वाच् + ए = वाचे।

चतुर्थी और पञ्चमी बहुवचन में वाच् + भ्यस्। 'चोः कुः' से च् को क्-वाक्भ्यस्। 'इलां जशोऽन्ते' से क् को ग् करने पर वाग्भ्यस्। 'ससजुषो रुः' से स् को रु। रु को र्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग करने पर-वाग्भ्यः।

पञ्चमी एकवचन में वाच् + डसि। ड् और इ का लोप करने पर-वाच्+अस्। षष्ठी एकवचन में वाच् + डस्। ड् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप करने पर-वाच् + अस्। पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में वाच् + अस् = वाचस्। 'ससजुषो रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर-वाचः।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में वाच् + ओस् = वाचोस्। 'ससजुषो रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर-वाचोः।

षष्ठी बहुवचन में वाच् + आम् वाचाम्। सप्तमी एकवचन में वाच् + डि। ड् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप करने पर-वाच् + इ = वाचि।

सप्तमी बहुवचन में वाच् + सुप्। प् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप करने पर-वाच् सु। 'चोः कुः' से च् को क् करने पर-वाक् सु। 'इलां जशोऽन्ते' से क् को ग्-वाग् सु। 'आदेशप्रत्ययोः' से सु को मूर्धन्य करने पर-वाग् षु। 'खरि च' से ग् को क् आदेश होगा-वाक् षु = वाक्षु।

संबोधन में प्रथमा के समान ही रूप होते हैं-हे वाक्, हे वाग्। हे वाचौ। हे वाचः।

वाच् के रूप इस प्रकार हुए —

प्रथमा	वाक्, वाग्	वाचौ	वाचः
द्वितीया	वाचम्	"	"
तृतीया	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
चतुर्थी	वाचे	"	वाग्भ्यः
पंचमी	वाचः	"	"
षष्ठी	"	वाचोः	वाचाम्
सप्तमी	वाचि	"	वाक्षु
संबोधन	हे वाक्, हे वाग्	हे वाचौ	हे वाच

इदम् स्त्रीलिङ्ग शब्द

इदम् शब्द का रूप स्त्रीलिङ्ग में पुल्लिङ्ग से भिन्न होता है।

प्रथमा एकवचन में इदम् + सु होने पर इदम् के द को य करने के लिये सूत्र है—

३६१. यः सौ । ७ । २ । ११० ।

इदमो दस्य यः । इदम् । त्यदाद्यत्वम् । पररूपत्वम् । टाप् । 'दश्च' (२७५) इति मः । इमे । इमाः । इमाम् । अनया । 'हलि लोपः' (२७७) आभ्याम् । आभिः । अस्यै । अस्याः । अनयोः । आसाम् । आसु ।

इदम् से परे सु होने पर इदम् के द को य आदेश होता है।

'इदम् सु' में द को य करने पर—इयम् सु । सु में उ की इत्संज्ञा और लोप होकर—इयम् स् । 'हलङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्पृक्तं हल' से अपृक्त स् का लोप होकर—इयम् ।

('त्यदादीनामः' (सूत्र १६३) सूत्र से इदम् के म के स्थान पर अ आदेश होना चाहिए था, किन्तु 'इदमो मः' (सूत्र २७२) अपवाद प्रस्तुत करता है कि सु

परे होने पर इदम् के म् को म् ही हो; अतः 'इदम् स्' में म् को अकार नहीं हुआ।)

प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में इदम् + औ। 'त्यदादीनामः' से इदम् के म् को अकार आदेश करने पर इद अ औ। 'अतो गुणे' से इद के अ से परे अ आने पर पर-रूप एकादेश होकर—इद औ। 'अजाद्यतष्टाप्' से स्त्रीलिङ्ग टाप् प्रत्यय होगा—इद टाप् औ। टाप् में ट् और प् का लोप होने पर—इद आ औ। इद के अ और उसके परवर्ती आ के स्थान पर 'अकः सवर्णे दीर्घः' से आ आदेश—इदा औ।

पुल्लिङ्ग 'इदम्' की रूप सिद्धि में सूत्र आया है—'दश्च' (सूत्र २७५) अर्थात् यदि विभक्ति प्रत्यय परे हो तो इदम् के द् को म् आदेश हो।

'इदा औ' में द् को म् आदेश करने पर—इमा औ। आकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'रमा' की रूपसिद्धि के प्रकरण में सूत्र है—'औङ आपः' (सूत्र २१६) जिसके अनुसार आप् से अन्त होने वाले अंग से परे औङ् (औ तथा औट्) को शी आदेश हो।

इमा औ मे इमा टाप् प्रत्यय लगाकर बना है अतः आबन्त है। इससे परे औ को शी होगा—इमा शी।

शी में श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप करने पर इमा ई। 'आद्गुणः' से गुण एकादेश करने पर—इमे।

प्रथमा बहुवचन में इदम् + जस्। जस् में ज् की 'चुट्' से इत्संज्ञा और लोप करने पर इदम् अस्। 'त्यदादीनामः' से म् को अ करने पर इद अ अस्। 'अतो गुणे' से अ + अ को पररूप एकादेश हुआ—इद अस्। 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् प्रत्यय हुआ—इद टाप् अस्। टाप् में ट् और प् का लोप करने पर इद आ अस् इदा अस्। 'दश्च' सूत्र से द् को म् करने पर इमा अस्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ एकादेश करने पर इमास्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—इमाः।

द्वितीया एकवचन में इदम् + अम्। 'त्यदादीनामः' से इदम् के म् को अ—इद अ अम्। 'अतो गुणे' से इद के अ और इससे परवर्ती अ के स्थान पर पररूप एकादेश अ—इद अम्। 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप्—इद टाप् अम्। टाप् में

ट और प का लोप करने पर—इद आ अम्। 'दश्च' सूत्र से द को म करने पर—इम आ अम्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से इम के अ और उससे परवर्ती आ को सवर्ण दीर्घ—इमाअम्। पुनः 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ एकादेश करने पर—इमाम्।

द्वितीया द्विवचन में इदम् + औट्। ट की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप होने पर इदम् + औ। अब प्रथमा द्विवचन के समान ही 'त्यदादीनामः' से इदम् के म को अ—इदअ औ। 'अतो गुणे' से अ + अ एकादेश करने पर इद औ। 'अजाद्यष्टाप' से टाप्—इद टाप् औ। टाप् में ट और प का लोप—इद आ औ। अ + आ को सवर्णदीर्घ एकादेश आ—इदा औ। 'दश्च' से द को म आदेश होकर इमा औ। 'औङ आपः' से औ का शी—इमा शी। शी में श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप—इमा ई। 'आदगुणः' से गुण एकादेश करने पर—इमे।

द्वितीया बहुवचन में इदम् + शस्। श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप—इदम् अस्। 'त्यदादीनामः' से म को अ हुआ—इद अ अस्। 'अतो गुणे' से अ + अ को पररूप एकादेश अ—इद अस्। 'अजाद्यष्टाप' से टाप्—इद टाप् अस्। टाप् में ट और प का लोप—इद आ अस्। इद के अ और उससे परवर्ती आ को सवर्ण दीर्घ—इदा अस्। 'दश्च' से द को म करने पर—इमास्। 'ससजुषो रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग—इमाः।

तृतीया एकवचन में इदम् + टा। 'चुटू' से ट की इत्संज्ञा और लोप—इदम् आ। 'त्यदादीनामः' से म को अ करने पर—इद अ आ। 'अतो गुणे' से अ + अ = अ—इद आ। 'अजाद्यष्टाप' से टाप्—इद टाप् आ। टाप् में ट और प का लोप हुआ—इद आ आ। अ + आ = आ सवर्णदीर्घ करने पर इदा आ। 'अनाप्यकः' (२७६) से इद् भाग को अन् आदेश करने पर—अना आ। 'आङि ञापः' (सूत्र २१८) से अना के आ को ए आदेश करने पर—अने आ।—अने आ। 'एचोऽयवायावः' से ए को अय्—अन् अय् आ = अनया।

तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में इदम् + भ्याम्। 'त्यदादीनामः' से म को अ—इद अ भ्याम्। 'अतो गुणे' से पररूप एकादेश अ + अ = अ—इदभ्याम्। 'अजाद्यष्टाप' से टाप्—इद टाप् भ्याम्। टाप् में ट और प का लोप—इद आभ्याम् = इदाभ्याम्। 'हलि लोपः' (सूत्र २७७, पुल्लिङ्ग 'इदम्' की

रूपसिद्धि में आ चुका है) से तृतीयादि हलादि विभक्ति परे होने पर ककाररहित इदम् के इद् भाग का लोप होता है। अतः इद का लोप होने पर आभ्याम्।

तृतीया बहुवचन में इदम् भिस्। 'त्यदादीनामः' से म को अ— इद अ भिस्। 'अतो गुणे' से अ + अ के स्थान पर पररूप एकादेश अ—इद भिस्। 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से टाप्—इदं टाप् भिस्। टाप् में ट् और प् का लोप—इद आ भिस्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से इदा भिस्। 'हलि लोपः' से इदम् के इद् भाग का लोप करने पर—आभिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग—आभिः।

चतुर्थी एकवचन में इदम् + डे। डे में ड् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप—इदम् + ए। 'त्यदादीनामः' से म् को अ करने पर—इद अ ए। 'अतो गुणे' से पररूप एकादेश करने पर इद ए। 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप्—इद टाप् ए। टाप् में ट् और प् का लोप करने पर—इद आ ए। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से सवर्ण दीर्घ करने पर—इदा ए।

इदम् की सर्वनाम संज्ञा होती है ('सर्वादीनि सर्वनामानि' सूत्र) अतः 'सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च' (सूत्र २२०) से आबन्त सर्वनाम से परे डित् प्रत्ययों को स्याद् आगम होता है और आबन्त अंग के आप् को ह्रस्व होता है।

अतः 'इदा ए' में ए को स्याद् आगम हुआ और इदा के आ को अ हुआ—इद स्याद् ए। ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप—इद स्या ए। 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि एकादेश आ + ए = ऐ करने पर—इदस्यै। 'हलि लोपः' से इदम् के इद् भाग का लोप करने पर—अस्यै।

चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में—इदम् भ्यस्। 'त्यदादीनामः' से इदम् के म् को अ—इद अ भ्यस्। 'अतो गुणे' से पररूप एकादेश करने पर—इदभ्यस्। 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् करने पर—इद टाप्भ्यस्। 'टाप्' में ट् और प् का लोप करने के बाद—इद आ भ्यस्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से अ + आ को आ आदेश—इदाभ्यस्। 'हलि लोपः' से इदम् के इद् भाग का लोप—आभ्यस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—आभ्यः।

पञ्चमी एकवचन में इदम् + डसि। डसि में ड् और इ का लोप करने पर इदम् अस्। 'त्यदादीनामः' से म् को अ—इद अ + अस्। 'अतो गुणे' से इद के अ और उससे परवर्ती अ के स्थान पर पररूप एकादेश—अ = इद अस्। 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप्—इद टाप् अस्। टाप् में ट् और प् का लोप करने पर—इद आ अस्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से इद के अ और आ को सवर्णदीर्घ आदेश करने पर—इदा अस्। सर्वनामसंज्ञा होने से 'सर्वनाम्नः स्याड् द्रस्वश्च' से स्याट् का आगम और आबन्त अंग को ह्रस्व करने पर—इद स्याट् अस्। स्याट् में ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप—इद स्या अस्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से सवर्ण दीर्घ आदेश हुआ—इदस्यास्। 'हलि लोपः' से इदम् के इद भाग का लोप होने पर—अस्यास्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—अस्याः।

षष्ठी एकवचन में भी इसी प्रकार इदम् + डस् के बाद ड् का लोप होने पर इदम् अस् होकर रूप बनेगा—'त्यदादीनामः'—इद अ अस्। 'अतो गुणे'—इद अस्। 'अजाद्यतष्टाप्'—इद टाप् अस् = इद आ = इदा अस्। 'सर्वनाम्नः स्याड् द्रस्वश्च'—इद स्याट् अस् = इदस्यास्। 'हलिलोपः'—अस्यास्। 'ससजुषोः रुः' से अस्यारु—अस्यार्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—अस्याः।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में इदम् ओस्। 'त्यदादीनामः' से म् को अ करने पर—इद अ ओस्। 'अतो गुणे' से अ + अ को पररूप अ करने पर इद ओस्। 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप्—इद टाप् में ट् और प् का लोप करने पर—इद आ ओस्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ एकादेश करने पर इदा ओस्। 'अनाप्यकः' से इद को अन् आदेश करने पर—अना ओस्। 'आडि चापः' से अना के आ को ए करने पर—अने ओस्। 'एचोऽयवायावः' से अय् आदेश करने पर—अनयोस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—अनयोः।

षष्ठी बहुवचन में इदम् + आम्। 'त्यदादीनामः' से म् को अ—इद अ आम्। 'आम् गुणे' से अ + अ = अ—इद आम्। 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप्—इद टाप् में ट् और प् का लोप करने पर—इद आ आम्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से अ

+ आ = आ आदेश करने पर—इदा आम्। इदम् की 'सर्वादीनि सर्वनामानि'से सर्वनाम संज्ञा होने के कारण 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' से सुट का आगम—इदा सुट् आम्। सुट् में उ और ट् का लोप होने पर—इदा स् आम्। 'हलि लोपः' से इद का लोप करने पर—आ स् आम् = आसाम्।

सप्तमी एकवचन में इदम् + डि। डि में ड् की इत्संज्ञा और लोप करने पर—इदम् इ। 'त्यदादीनामः' से म् को अ करने पर इद अ इ। 'अतो गुणे' से अ + अ को पररूप एकादेश करने पर—इद इ। 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप्—इद टाप् इ। टाप् में ट् और प् का लोप हुआ—इद आ इ। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से अ+आ = आ करने पर—इदा इ। 'ङेरान्मद्याम्नीभ्यः' (सूत्र १६८) से इ को आम् आदेश हुआ—इदा आम्। 'सर्वनाम्नः स्याद् ढ्रस्वश्च' से स्याट् का आगम और इदा के आ को ह्रस्व होगा—इद स्याट् आम्। 'ट्' की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप करने पर—इद स्या आम्। 'हलि लोपः' से इद का लोप करने पर अस्या आम्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से सवर्ण दीर्घ करने पर सिद्ध हुआ—अस्याम्।

सप्तमी बहुवचन में इदम् + सुप्। सुप् में प् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप करने पर इदम् सु। 'त्यदादीनामः' से म् को अ आदेश होगा—इद अ सु। 'अतो गुणे' से अ + अ को पररूप एकादेश अ करने पर—इद सु। 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् होगा—इद टाप् सु। टाप् में ट् और प् का लोप करने पर—इद आ सु। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से सवर्ण दीर्घ एकादेश करने पर—इदा सु। 'हलि लोपः' से इद का लोप करने पर सिद्ध होगा—आसु।

इदम् स्त्रीलिङ्ग के रूप इस प्रकार हुए —

प्रथमा	इयम्	इमे	इमाः
द्वितीया	इमाम्	"	"
तृतीया	अनया	आभ्याम्	आभिः
चतुर्थी	अस्यै	"	आभ्यः
पञ्चमी	अस्याः	"	"
षष्ठी	"	अनयोः	आसाम्
सप्तमी	अस्याम्	"	आसु

पकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द अप्

अप् = जल शब्द का प्रयोग बहुवचन में ही होता है। प्रथमा बहुवचन में अप् + जस् होने पर जस् में ज् की 'चुटू' से इत्संज्ञा और लोप होने पर—अप् + अस्। 'अप्-तृन्-तृच्-स्वसृ- नप्तृ-नेष्टृ-त्वष्टृ-क्षतृ-होतृ-पोतृ-प्रशास्तृणाम्' सूत्र से सम्बुद्धि से भिन्न सर्वनामस्थान (सु औ जस् अम् औट्) परे होने पर अप् आदि की उपधा को दीर्घ होता है।

'अप् अस्' में अप् की उपधा अ को दीर्घ करने पर आपस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को २। २ को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—आपः।

द्वितीया बहुवचन में अप् + शस्। श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और फिर लोप होने पर अप् अस् = अपस्। 'ससजुषो रुः' से स् को रु। रु को २। २ को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—अपः।

तृतीया बहुवचन में अप् + भिस् होने पर यह सूत्र प्राप्त होता है—

३६२. अपो भि। ७। ४। ४८

अपस्तकारो भादौ प्रत्यये। अदिभः। अदभ्यः, अदभ्यः। अपाम्। अप्सु। अप् से परे भ से आरम्भ होने वाला प्रत्यय आवे तो अप् के प को त् आदेश हो।

(अच उपसर्गात्तिः' सूत्र से तः लेकर इस सूत्र का अर्थ किया जाता है। भि = भ् + सप्तमी, प्रत्यये का विशेषण। भि का अर्थ होगा भ् से आरम्भ होने वाले प्रत्यय के परे रहने पर।)

अप् + भिस् को अत् + भिस् हुआ।

त् को जश् करने पर अदभिस्। स् को 'ससजुषोः रुः' से रु, रु को २। २ को 'खरवानसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—अदिभः।

चतुर्थी और पञ्चमी बहुवचन में अप् + भ्यस्। 'अपो भि' सूत्र से प को त्—अत्भ्यस्। त् को जश् (द) करने पर—अदभ्यस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को

रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—अद्भ्यः।

षष्ठी बहुवचन में अप् + आम् = अपाम्।

सप्तमी बहुवचन में अप् + सुप्। सुप् के प की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप करने पर—अप् सु = अप्सु।

संबोधन में प्रथमा बहुवचन के समान ही—हे आपः।

अप् शब्द के रूप इस प्रकार हुए —

प्रथमा	—	—	आपः
द्वितीया	—	—	अपः
तृतीया	—	—	अदिभः
चतुर्थी	—	—	अद्भ्य
पञ्चमी	—	—	"
षष्ठी	—	—	अपाम्
सप्तमी	—	—	अप्सु
संबोधन	—	—	हे आपः

हलन्तनपुंसकलिङ्ग-प्रकरणम्

यहाँ हलन्तनपुंसकलिङ्ग प्रकरण से अहन् (= दिन) शब्द की रूपसिद्धि दी जा रही है।

प्रथमा एकवचन में अहन् सु। 'स्वमोर्नपुंसकात्' (सूत्र २४४) से नपुंसक से परे सु और अम् विभक्ति प्रत्ययों का लुक् होता है। अतः सु का लोप हो गया—अहन्। अब 'रोऽसुपि' (सूत्र ११०) प्राप्त होता है, जिसका अर्थ है कि यदि सुप् परे न हो तो अहन् को र् आदेश होता है। 'अलोऽन्त्यस्य' से यह र् अहन् के अन्तिम न् को हुआ—अहर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—अहः।

प्रथमा द्विवचन में अहन् + औ।

'नपुंसकाच्च' (सूत्र २३५) से नपुंसक अंग से परे औङ् (प्रथमा के औ तथा द्वितीया के औट्) को शी आदेश होता है। अहन् + औ में औ को शी आदेश करने पर—अहन् + शी। शी में श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और फिर लोप करने पर—अहन् ई। 'यचि भम्' (सूत्र १६५) से अहन् की भसंज्ञा होती है। अब 'विभाषा डिश्योः' (सूत्र २४८) प्राप्त होता है, जिसका अर्थ है कि यदि डि और शी परे हो तो अंग के अवयव के रूप में आये हुए अन् के अ का विकल्प से लोप हो।

अब यदि अहन् ई में अन् के अ का लोप करें तो रूप होगा—अहन् ई = अहनी। यदि अ का लोप न करें तो रूप होगा—अहनी।

प्रथमा बहुवचन में अहन् + जस्। 'जश्शसोः शि' (सूत्र २३७) से जस् को शि आदेश हुआ—अहन् शि। शि में इ की इत्संज्ञा और लोप होने पर—अहन् इ। 'शिसर्वनामस्थानम्' (सूत्र २३८) से शि के इ के सर्वनामस्थान संज्ञा हुई। 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' (सूत्र १७७) से नकारान्त की उपधा को दीर्घ होता है। अहन् की उपधा अ को दीर्घ करने पर—अहान् इ = अहानि।

द्वितीया के रूप भी प्रथमा के समान ही होते हैं और वे ही सूत्र लागू होते हैं।

तृतीया एकवचन में अहन् + टा। 'युट्' सूट् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप करने पर—अहन् आ। 'यचि भम्' से भ संज्ञा होने पर 'अल्लोपोऽनः' (सूत्र २४७) से अन् के अ का लोप होता है—अहन् आ = अहना।

तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में अहन् + भ्याम् होने पर अहन् के न् को रु करने के लिये सूत्र है—

३६३. अहन् । ट । २ । ६ट

अहन् इत्यस्य रु पदान्ते । अहोभ्याम् ।

पद के अन्त में अहन् के न् को रु आदेश होता है।

अहन् + भ्याम् में न् को रु आदेश हुआ—अहरुभ्याम्। 'हशि च' से अप्लुत अ के बाद रु हो और उससे परे हश् प्रत्याहार का वर्ण हो तो रु को उ आदेश होता है—अह उभ्याम्। 'आद्गुणः' से अ + उ को गुण एकादेश होकर—अहोभ्याम्।

तृतीया बहुवचन में भी इसी प्रकार—अहन् भिस्। 'अहन्' सूत्र से न् को रु—अह रु भिस्। 'हशि च' से रु को उ करने पर—अह उ भिस्। 'आद्गुणः' से अ + उ को ओ आदेश करने पर—अहोभिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—अहोभिः।

चतुर्थी एकवचन में अहन् + डे। 'लशक्वतद्धिते' से ड् की इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप करने पर—अहन् ए। 'यचि भम्' से अहन् की भ संज्ञा हुई, 'अल्लोपोऽनः' से अन् के अ का लोप होकर—अहन् ए = अहने।

चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में अहन् + भ्यस्। 'अहन्' सूत्र से न् को रु हुआ—अहरु भ्यस्। 'हशि च' से रु को उ हुआ—अह उभ्याम्। 'आद्गुणः' से गुण एकादेश होकर—अहोभ्यस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर अहोभ्यः।

पञ्चमी एकवचन में अहन् + डसि में ड् और इ का लोप होने पर तथा षष्ठी एकवचन में अहन् + डस् में ड् का लोप होने पर अहन् + अस्। 'यचि भम्' से अहन् की भ संज्ञा होकर 'अल्लोपोऽनः' से अन् के अ का लोप होगा—अहन् अस् = अहनस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को

‘खरवसानयोर्विसर्जनीयः’ से विसर्ग करने पर—अहन् ।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में—अहन् ओस् । ‘यचि भम्’ से भ संज्ञा होकर ‘अल्लोपोऽनः’ से अन् के अ का लोप होगा—अहन् ओस् अहनोस् । ‘ससजुषोः रुः’ से स् को रु । रु को र् । र् को ‘खरवसानयोर्विसर्जनीयः’ से विसर्ग करने पर—अहनोः ।

षष्ठी बहुवचन में अहन् + आम् होने पर ‘यचि भम्’ से भ संज्ञा होकर ‘अल्लोपोऽनः’ से अन का लोप होगा—अहन् आम् = अहनाम् ।

सप्तमी एकवचन में अहन् + डि । ‘लशक्वतद्धिते’ से ङ् की इत्संज्ञा और लोप होने पर अहन् इ । ‘यचि भम्’ से भ संज्ञा होगी । ‘विभाषा डिश्योः’ (सूत्र २४८) से विकल्प से अन् के अ का लोप होगा । लोप करने पर—अहन् इ = अहनि । लोप न करने पर—अहन् इ = अहनि ।

सप्तमी बहुवचन में अहन् + सुप् । ‘हलन्त्यम्’ से प् की इत्संज्ञा, ‘तस्य लोपः’ से लोप करने पर—अहन् सु । ‘अहन्’ सूत्र से न् को रु करने पर—अहरु सु । रु करने पर—अह रु सु । रु में उ का लोप होकर—अह र सु । ‘खरवसानयोर्विसर्जनीयः’ से र् को विसर्ग करने पर अहः सु । ‘वाश्रारि’ सूत्र से विकल्प से विसर्ग के स्थान पर स् होता है, अतः दूसरा रूप होगा—अहस्सु ।

संबोधन के रूप प्रथमा विभक्ति के समान ही होते हैं । यथा—हे अहः । हे अहनी, हे अहनी । हे अहानि ।

नपुंसकलिङ्ग ‘अहन्’ के रूप इस प्रकार हुए —

प्रथमा	अहः	अहनी, अहनी	अहानि
द्वितीया	..	..	..
तृतीया	अहना	अहोभ्याम्	अहोभिः
चतुर्थी	अहने	..	अहोभ्यः
पञ्चमी	अहनः	..	..
षष्ठी	..	अहनोः	अहनाम्
सप्तमी	अहिन्, अहनि	..	अहःसु, अहस्सु
संबोधन	हे अहः	हे अहनी, हे अहनी	हे अहानि

द्वि, त्रि, चतुर् के रूप तीनों लिङ्गों में

द्वि = दो

संख्यावाचक द्वि शब्द के रूप केवल द्विवचन में ही होते हैं। पुल्लिङ्ग में इसके रूप निम्नलिखित प्रकार से होते हैं। उल्लेखनीय है कि 'सर्वादीनि सर्वनामानि' सूत्रानुसार 'द्वि' शब्द सर्वनाम है।

इकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द 'द्वि'

द्वि से प्रथमा द्वि वचन में द्वि + औ आने पर यह सूत्र प्राप्त होता है—

१६३. त्यदादीनामः । ७ । २ । १०२

एषामकारो विभक्तौ । द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः । द्वौ, द्वौ । द्वाभ्याम् ३ ।
द्वयोः २ ।

त्यद् आदि शब्दों से परे विभक्ति हो तो त्यद् आदि शब्दों के अन्तिम अल् को अ आदेश होता है।

'सर्वादीनि सर्वनामानि' सूत्र के अन्तर्गत 'त्यद्' आदि सूत्र गिनाये गये हैं। यहाँ त्यद् से लेकर द्वि तक के आठ शब्दों से तात्पर्य है। ये आठ शब्द हैं—त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि।

भतः द्वि + औ में 'त्यदादीनामः' से द्वि के इ को अ आदेश हुआ—द्व + औ। 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि एकादेश करने पर—द्वौ। इसी प्रकार द्वितीया द्विवचन में द्वि + औट्। ट् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप करने पर द्वि + औ। 'त्यदादीनामः' से द्वि के इ को अ आदेश होगा—द्व + औ। 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि एकादेश करने पर—द्वौ।

तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में द्वि + भ्याम्। 'त्यदादीनामः' से द्वि के इ को अ आदेश करने पर—द्वभ्याम्। 'सुपि च' से द्व के अं को दीर्घ करने पर—द्वाभ्याम्।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में द्वि + ओस्। 'त्यदादीनामः' से द्वि के इ को अ आदेश होगा—द्व + ओस्। 'ओसि च' से द्व के अ को ए आदेश होगा—द्वे

ओस्। 'एचोऽयवायावः' से ए को अय् होगा दव् अय् ओस् = द्वयोस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर-द्वयोः।

पुल्लिङ्ग में 'द्वि' के रूप इस प्रकार हुए (केवल द्विवचन) -

प्रथमा	द्वौ
द्वितीया	"
तृतीया	द्वयोः
चतुर्थी	"
पञ्चमी	"
षष्ठी	"
सप्तमी	द्वयोः।

इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द द्वि

स्त्रीलिङ्ग में दो की विवक्षा में प्रथमा और द्वितीया द्विवचन में द्वि + औ होने पर 'त्यदादीनामः' से विभक्ति परे होने पर अन्तिम अल् इ को अ आदेश हुआ-द्व + औ।

'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में टाप् प्रत्यय हुआ टाप् में ट् और प की इत्संज्ञा और लोप होने पर-द्व आ + औ। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से अ + आ = आ करने पर द्वा + औ। 'औङ आपः' से औ को शी आदेश हुआ-द्वा + शी। शी में श् की इत्संज्ञा और लोप करने पर-द्वा + ई। गुण एकादेश करने पर-द्वे।

तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के 'द्विवचन में द्वि + भ्याम्। 'त्यदादीनामः' से विभक्ति परे होने पर द्वि के इ को अ होगा-द्व + भ्याम्। 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् प्रत्यय-द्व टाप् भ्याम्। टाप् में ट् प् की इत्संज्ञा और लोप करने पर द्विआभ्याम्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से अ + आ = आ करने पर द्वाभ्याम्।

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में द्वि + ओस्। 'त्यदादीनामः' से द्वि के इ को अ करने पर—द्व ओस्। 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् करने पर—द्व टाप् ओस्। टाप् में ट् और प् की इत्संज्ञा और लोप करने पर—द्व आ ओस्। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ एकादेश करने पर—द्वा ओस्। 'आङि चापः' (सूत्र २१८) से आङ् और ओस् परे होने पर आप् को ए आदेश होता है। अतः द्वे ओस्। 'एचोऽयवायावः' से ए को अय्—द्वयोस्। 'ससजुषो रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—द्वयोः।

स्त्रीलिङ्ग में 'द्वि' शब्द के रूप इस प्रकार हुए (केवल द्विवचन) —

प्रथमा	द्वे
द्वितीया	"
तृतीया	द्वाभ्याम्
चतुर्थी	"
पञ्चमी	"
षष्ठी	द्वयोः
सप्तमी	"

त्रि = तीन

इकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द त्रि (तीन)

त्रि शब्द के रूप केवल बहुवचन में होते हैं।

प्रथमा बहुवचन में त्रि + जस् होने पर। जस् में ज् की 'चुटू' से इत्संज्ञा और लोप करने पर—त्रि जस्। 'जसि च' (सूत्र १६८) से त्रि के इ को गुण आदेश होगा—त्रे + अस्। 'एचोऽयवायावः' से ए को अय् आदेश करने पर त्रयस्। 'ससजुषो रुः' से स् को रु—त्रयरु। रु में उ की इत्संज्ञा और लोप करने पर—त्रयर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—त्रयः।

द्वितीया बहुवचन में त्रि + शस्। श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप करने पर त्रि + अस्।

'प्रथमयोः पूर्वसवर्ण' से इ और अ के पूर्वसवर्णदीर्घ ई करने पर त्रीस्। 'तस्मात्तृण्योश्च' से त्रि को न करने पर—त्रीन।

तृतीया बहुवचन में त्रि + भिस् = त्रिभिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रुः रु को र्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से र् को विसर्ग करने पर—त्रिभिः।

चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में त्रि+भ्यस् = त्रिभ्यस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से उ की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप करने पर त्रिभ्यर्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—त्रिभ्यः।

षष्ठी बहुवचन में त्रि + आम्। अब त्रि को त्रय आदेश करने के लिये सूत्र है—

१६२. त्रेस्त्रयः। ७। १। ५३

त्रि-शब्दस्य त्रयादेशः स्यादामि। त्रयाणाम्। त्रिषु। गौणत्वेऽपि प्रियत्रयाणाम्।

त्रि शब्द को आम् परे रहते त्रय आदेश होता है।

त्रि + आम् को त्रय आम्। 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट् का आगम—टित् होने से आदि में—त्रय नुट् आम्। नुट् में उ और ट् का लोप होने पर—त्रय न आम् = त्रय नाम्। 'नाभि' से त्रय के अ को दीर्घ करने पर त्रयानाम्। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यायेऽपि' से न् को ण् करने पर—त्रयाणाम्।

सप्तमी बहुवचन में त्रि + सुप्। प् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप करने पर त्रि सु। 'आदेशप्रत्ययोः' से को ष् आदेश करने पर त्रिषु।

इस प्रकार पुल्लिङ्ग में त्रि शब्द के रूप हुए (केवल बहुवचन में) —

प्रथमा	—	—	त्रयः
द्वितीया	—	—	त्रीन्
तृतीया	—	—	त्रिभिः
चतुर्थी	—	—	त्रिभ्यः
पञ्चमी	—	—	"
षष्ठी	—	—	त्रयाणाम्
सप्तमी	—	—	त्रिषु

इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द त्रि

त्रि के रूप केवल बहुवचन में होते हैं।

प्रथमा में त्रि + जस्। ज् की 'युट्' से इत्संज्ञा और लोप करने पर—त्रि + अस्।

२२४. त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृ-चतसृ । ७। २। ६६।

स्त्रीलिङ्गयोरेतयोरेतौ स्तो विभक्तौ।

यदि विभक्ति का प्रत्यय परे हो तो स्त्रीलिङ्ग में त्रि को तिसृ और चतसृ को चतसृ आदेश हो।

त्रि अस् में त्रि को तिसृ आदेश करने पर तिसृ + अस्। 'ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः' (सूत्र २०४) से ङि या सर्वनामस्थान परे होने पर ह्रस्व ऋकारान्त अंग को गुण आदेश होता है, अतः तिसृ के ऋ को गुण आदेश प्राप्त हुआ, तब अग्रिम सूत्र से ऋ को र् को ही होगा—

२२५. अचि र ऋतः । ७। २। १००।

तिसृ-चतसृ एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि।
गुणदीर्घात्वानामपवादः। तिस्रः, तिस्रः। तिसृभिः। तिसृभ्यः तिसृभ्यः।
आमि नुट्।

यदि अच् परे हो तो तिसृ और चतसृ के ऋ को र् आदेश हो।

यह सूत्र गुण, दीर्घ और उत्त्व का अपवाद है।

तिसृ + अस् में ऋ को 'अचि र ऋतः' से र् आदेश हुआ—तिसृ र् अस् = तिस्रस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। तिस्ररु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—तिस्रः।

द्वितीया बहुवचन में भी त्रि शस् में 'लशक्वतद्धिते' से श् की इत्संज्ञा और लोप करने पर त्रि अस् त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृ-चतसृ से तिसृ आदेश—तिसृ

अस्। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से सवर्णदीर्घ प्राप्त था किन्तु 'अचि र ऋतः' से ऋ को र आदेश करने पर—तिसृ र अस् = तिस्रस्। 'ससजुषो रुः' से स् को रु। रु को र। र को —'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विरार्ग करने पर—तिस्रः।

तृतीया बहुवचन में त्रि + भिस्। 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ' से त्रि को तिसृ आदेश करने पर—तिसृभिस्। 'ससजुषो रुः' से स् से रु। रु को र। र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—तिसृभिः।

चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में त्रि+भ्यस्। 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ' से तिसृ आदेश करने पर—तिसृभ्यस्। 'ससजुषो रुः' से स् को रु। रु को र। र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—तिसृभ्यः।

षष्ठी बहुवचन में त्रि + आम् होने पर 'त्रेस्त्रयः' सूत्र से त्रि को त्रय आदेश प्राप्त हुआ, किन्तु उसे बाधकर 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृ-चतसृ' से तिसृ आदेश हुआ—तिसृ आम्। अब दो सूत्र एक साथ प्राप्त होंगे—'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट् का आगम और 'अचि र ऋतः' से तिसृ के ऋ को र आदेश। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' से परं कार्य रेफ आदेश ही होना चाहिये, किन्तु 'नुम्-अचिर-तृज्जदभावेभ्यो नुट् पूर्वप्रतिषेधेन' वार्तिक से नुट् आगम ही होगा—तिसृ नुट् आम्। नुट् में उ और ट् का लोप होने पर—तिसृ न आम्—तिसृ नाम्। 'नामि' सूत्र से तिसृ के ऋ को दीर्घ आदेश प्राप्त था किन्तु उसका निषेध करने वाला सूत्र है—

२२६. न तिसृचतसृ। ६। ४। ४।

एतयोर्नामि दीर्घो न। तिसृणाम्। तिसृषु।

नाम् परे होने पर तिसृ और चतसृ के अन्तिम स्वर को दीर्घ नहीं होता है।

ऐसी स्थिति में तिसृनाम्। 'ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' वार्तिक से ऋ से परे न् को ण् आदेश करने पर—तिसृणाम्।

सप्तमी बहुवचन में त्रि + सप्। 'हलन्त्यम्' से प की इत्संज्ञा और तस्य

लोपः' से लोप करने पर—त्रि सु। 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ' से त्रि को तिसृ आदेश करने पर तिसृ सु। 'आदेशप्रत्ययो' से सु को मूर्धन्य करने पर—तिसृषु। संबोधन का रूप नहीं होता है।

इस प्रकार स्त्रीलिङ्ग में 'त्रि' के रूप हुए — (केवल बहुवचन में)

प्रथमा	—	—	तिस्रः
द्वितीया	—	—	तिसृः
तृतीया	—	—	तिसृभिः
चतुर्थी	—	—	तिसृभ्यः
पञ्चमी	—	—	"
षष्ठी	—	—	तिसृणाम्
सप्तमी	—	—	तिसृषु

इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द 'त्रि'

प्रथमा बहुवचन में त्रि + जस् में 'चुटू' से ज् की इत्संज्ञा होने पर त्रि + अस्। द्वितीया बहुवचन में त्रि + शस् में 'लशक्वतद्धिते' से श् के इत्संज्ञा और लोप होने पर त्रि + अस् होने पर 'जश्शसोः शि' से शि आदेश त्रि + शि। श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप—त्रि इ। 'शि सर्वनामस्थानम्' से शि की सर्वनामस्थान संज्ञा हुई, 'नपुंसकस्य झलचः' से सर्वनामस्थान परे होने पर नुम् का आगम होगा, 'मिदचोऽन्त्यात् परः' से नुम् आगम मित् है अतः अन्तिम अच् से परे होगा—त्रि नुम् इ। नुम् में उ और म् का लोप होने पर—त्रि न् इ। 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से त्रिन् की उपधा को दीर्घ होगा—त्रीनि। 'अटकुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से न् को ण् करने पर—त्रीणि।

तृतीया बहुवचन में त्रि भिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—त्रिभिः।

चतुर्थी और पञ्चमी बहुवचन में त्रि + भ्यस् = त्रिभ्यस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—त्रिभ्यः।

षष्ठी बहुवचन में त्रि + आम् । 'त्रेस्त्रयः' से त्रि को त्रय आदेश होगा—त्रय आम् । 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट् का आगम होगा, जो टित् होने के कारण 'आद्यन्तौ टकितौ' से आदि में होगा—त्रय नुट् आम् । नुट् में उ और ट् का लोप करने पर—त्रय न् आम् = त्रयनाम् । नामि से त्रय के अन्तिम अ को दीर्घ होगा—त्रयानाम् । 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से न् को ण् करने पर—त्रयाणाम् ।

सप्तमी बहुवचन में त्रि + सुप् । सुप् में प् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, 'तस्म लोपः' से लोप करने पर—त्रि सु । 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को मूर्धन्य करने पर—त्रिषु ।

त्रि शब्द के नपुंसकलिङ्ग बहुवचन में रूप इस प्रकार हुए —

प्रथमा	—	—	त्रीणि
द्वितीया	—	—	त्रीणि
तृतीया	—	—	त्रिभिः
चतुर्थी	—	—	त्रिभ्यः
पञ्चमी	—	—	"
षष्ठी	—	—	त्रयाणाम्
सप्तमी	—	—	त्रिषु

हलन्त पुल्लिङ्ग शब्द चतुर् (चार)

चतुर् शब्द नित्य बहुवचनान्त होता है । प्रथमा बहुवचन में चतुर् + जस् । ज् की 'चुटू' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप होने पर चतुर् अस् । अब यहाँ सूत्र प्राप्त होगा—

२५६. चतुरनडुहोरामुदात्तः । ७ । १ । ६८ ।

अनयोराम् स्यात्सर्वनामस्थाने परे ।

सर्वनामस्थान परे होने पर चतुर् और अनडुह शब्दों को आम् आगम होता है ।

चतुर् + अस् में भी सर्वनामस्थान परे रहने चतुर् को आम् आगम होगा। 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से अन्तिम अच् से परे होगा—चतुआम् र्-अस्। आम् में म् की इत्संज्ञा और लोप करने पर—चतु आर् अस्। 'इको यणचि' से उ को व् आदेश करने पर चत्वारस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—चत्वारः।

द्वितीया बहुवचन में चतुर् + शस्। 'लशक्वतद्धिते' से श् की इत्संज्ञा और लोप करने पर—चतुर अस्।

अब यहाँ सर्वनामस्थान परे नहीं है अतः आम् आगम नहीं होगा—चतुरस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर चतुरः।

तृतीया बहुवचन में चतुर् भिस् = चतुर्भिस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—चतुर्भिः।

चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में चतुर् भ्यस् = चतुर्भ्यस् 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र्। र् को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—चतुर्भ्यः।

षष्ठी बहुवचन में चतुर् आम्। यहाँ 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' प्राप्त नहीं होगा, अतः नुट् आगम करने के लिये दूसरा सूत्र है—

२६६. षट्चतुर्भ्यश्च । ७ । १ । ५५ ।

षट्संज्ञकेभ्यश्चतुरश्चामो नुडागमः स्यात्।

जिनकी षट् संज्ञा होती है उनसे परे और चतुर् शब्द से परे आम् को नुट् का आगम होता है।

चतुर् आम् में आम् को नुट् का आगम हुआ। नुट् दित् है, अतः 'आद्यन्तौ टकितौ' से आदि में होगा—चतुर् नुट् आम्। नुट् में उ और ट् का लोप करने पर चतुर् न् आम् = चतुर् नाम्।

अब न् को ण् करने के लिये सूत्र है—

२६७. रषाम्भ्यां नो णः समानपदे । ८ । ४ । ४ ।

एकपदस्थाभ्यां रेफषकाराभ्यां परस्य नस्य णः स्यात् । 'अचो रहाभ्यां द्वे' । चतुर्णाम्, चतुर्णाम् ।

यदि एक ही पद में र या ष से परे न हो तो न को ण् आदेश होता है ।

अतः चतुर्णाम् में न को ण् होकर—चतुर्णाम् । 'अचो रहाभ्यां द्वे' सूत्र से अच् से परे रेफ होने के कारण उसके बाद आये यर् प्रत्याहार के वर्ण को विकल्प से द्वित्व होता है । ण् को विकल्प से द्वित्व करने पर—चतुर्णाम् ।

सप्तमी बहुवचन में चतुर् + सुप् । प की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप होने पर—चतुर् सु । 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से खर् (स्) के परे रहते चतुर् के र को विसर्ग प्राप्त हुआ, किन्तु इसे स्पष्ट करते हैं—

२६८. रोः सुपि । ८ । ३ । १६ ।

रोरेव विसर्जनीयः सुपि । षत्वम् । षस्य द्वित्वे प्राप्ते—

यदि सप्तमी के बहुवचन का सुप् प्रत्यय परे हो तो रु के स्थान पर ही विसर्ग हो (अन्य किसी प्रकार के र के स्थान पर विसर्ग न हो ।)

चतुर् का र रु के स्थान पर नहीं है, अतः विसर्ग नहीं होगा—चतुर्षु । 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को ष करने पर—चतुर्षु ।

अब यहाँ 'अचो रहाभ्यां द्वे' से र से परे ष को विकल्प से द्वित्व होना चाहिए, किन्तु द्वित्व का निषेध करनेवाला सूत्र है—

२६९. शरोऽचि । ८ । ४ । ४६ ।

अचि परे शरो न द्वे स्तः । चतुर्षु ।

यदि शर् से परे अच् हो तो शर् को द्वित्व नहीं होता है ।

यहाँ शर् (ष) से परे अच् उ है अतः ष को द्वित्व नहीं होगा चतुर्षु ही रहेगा ।

पुल्लिङ्ग में चतुर् के रूप इस प्रकार हुए (केवल बहुवचन में) —

प्रथमा	—	—	चत्वारः
द्वितीया	—	—	चतुरः
तृतीया	—	—	चतुर्भिः
चतुर्थी	—	—	चतुर्भ्यः
पञ्चमी	—	—	—
षष्ठी	—	—	चतुर्णाम्, चतुर्णाम्
सप्तमी	—	—	चतुर्षु

हलन्त स्त्रीलिङ्ग चतुर् शब्द

नित्यबहुवचन होने से प्रथमा विभक्ति में स्त्रीलिङ्ग में चतुर् + जस्। जस् में ज् की 'चुटू' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप होगा—चतुर् अस्। 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतुसृ' से चतुर् को चतसृ आदेश करने पर चतसृ + अस्। 'ऋतो डि—सर्वनामस्थानयोः' (सूत्र २०४) से ऋकारान्त अंग को गुण प्राप्त हुआ, किन्तु 'अचि र ऋतः' (सूत्र २२५) से ऋ को र आदेश होगा—चतसृ र अस् = चतस्रस्। 'ससजुषोः रुः' से स् को रु। रु को र। र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर चतस्रः।

द्वितीया बहुवचन में चतुर + शस्। शस् में श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप चतुर अस्। 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ' से चतुर को चतसृ आदेश करने पर चतसृ + अस्। सर्वनामस्थान न होने से 'ऋतो डि—सर्वनामस्थानयोः' नहीं लागू होगा। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्व सवर्ण दीर्घ प्राप्त हुआ, किन्तु 'अचि र ऋतः' से ऋ को र आदेश होगा—चतस्रस्। स् को 'ससजुषोः रुः' से रु। रु को र। र को विसर्ग करने पर—चतस्रः।

तृतीया बहुवचन में चतुर् + भिस्। 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ' सूत्र से

चतुर् को चतसृ आदेश हुआ—चतसृभिस् । 'ससजुषोः रुः' से स् को रु । रु को र । र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—चतसृभिः ।

चतुर्थी और पञ्चमी बहुवचन में चतुर्भ्यास् । 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ' से चतुर को चतसृ आदेश करने पर—चतसृभ्यस् । 'ससजुषोः रुः' से स् को रु । रु को र । र को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग करने पर—चतसृभ्यः ।

षष्ठी बहुवचन में चतुर् + आम् । 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ' से चतुर् को चतसृ आदेश करने पर चतसृ आम् । 'अचि र ऋतः' से को र आदेश प्राप्त हुआ, किन्तु 'नुम् अचिर तृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन' वार्तिक के अनुसार पूर्वविप्रतिषेध होने से 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' सूत्र से नुट् का आगम होगा—चतसृ नुट् आम् । नुट् में उ और ट् का लोप करने पर—चतसृनाम् । 'नामि' (सूत्र १४६) से नाम् पर रहते सृ के ऋ को दीर्घ प्राप्त हुआ, किन्तु 'न तिसृचतसृ' सूत्र से निषेध हो जायगा । 'ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' वार्तिक से न् को ण् आदेश करने पर सिद्ध हुआ—चतसृणाम् ।

सप्तमी बहुवचन में चतुर सुप् । सुप् में प् की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप करने पर चतुर सु । 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ' से चतुर् के स्थान पर चतसृ आदेश होगा—चतसृसु । 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को ष करने पर—चतसृषु ।

स्त्रीलिङ्ग में चतुर् शब्द के रूप इस प्रकार हुए (केवल बहुवचन) —

प्रथमा	—	—	चतस्रः
द्वितीया	—	—	चतस्रः
तृतीया	—	—	चतसृभिः
चतुर्थी	—	—	चतस्रभ्यः
पञ्चमी	—	—	"
षष्ठी	—	—	चतसृणाम्
सप्तमी	—	—	चतसृषु

नपुंसकलिङ्ग चतुर् शब्द

नपुंसकलिङ्ग में नित्यबहुवचनान्त चतुर् शब्द से प्रथमा बहुवचन में चतुर् + जस्। 'जश्शसोः शि' से जस् को शि होगा। 'शि सर्वनामस्थानम्' से शि। चतुर् शि। शि की सर्वनामस्थान संज्ञा होकर 'चतुरनडुहोरामुदात्तः' से आम् का आगम होगा। अम् मित् होने से 'मिदवोऽन्त्यात्परः' से अन्तिम अच् से परे होगा। 'शि' में श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप करने पर इ होगा। चतु आम् र् इ। आम् में म् की इत्संज्ञा और लोप करने पर चतु आ र् इ। 'इको यणचि' से उ को व् आदेश करने पर सिद्ध होगा—चत्वारि।

इसी प्रकार द्वितीया बहुवचन में भी चतुर्+शस्। 'जश्शसोः शि' से शस् को शि—चतुर् शि। शि में श् की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा और लोप—चतुर् इ। 'शि सर्वनामस्थानम्' से शि की सर्वनामस्थान संज्ञा होने से 'चतुरनडुहोरामुदात्तः' से आम् आगम—चतु आम् र् इ से चत्वारि।

शेष रूप चतुर् हलन्त पुल्लिङ्ग के समान ही होते हैं—

तृतीया बहुवचन में चतुर् भिस् = चतुर्भिस्—चतुर्भिरु—चुर्भिर् = चतुर्भिः। चतुर्थी, पञ्चमी बहुवचन में चतुर्भ्यम् = चतुर्भ्यस्—चतुर्भ्यर् = चतुर्भ्यः। षष्ठी बहुवचन में चतुर् आम्। 'षट्चतुर्भ्यश्च' से चतुर् से परे आम् को नुट् का आगम होगा—चतुर् नुट् आम्। चतुर् नाम्। 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' से न् को ण् होगा—चतुर्णाम्। 'अचो रषाभ्यां द्वे' से विकल्प से द्वित्व होने पर—चतुर्णाम्।

सप्तमी बहुवचन में चतुर् सुप्—चतुर् सु 'आदेशप्रत्ययोः' से स् को ष्—चतुर्षु। 'शरोऽचि' से द्वित्व का निषेध होकर—चतुर्षु सिद्ध होगा। —

चतुर् शब्द को नपुंसकलिङ्ग में रूप इस प्रकार हुए —

प्रथमा	—	—	चत्वारि
द्वितीया	—	—	चत्वारि
तृतीया	—	—	चतुर्भिः
चतुर्थी	—	—	चतुर्भ्यः
पञ्चमी	—	—	"
षष्ठी	—	—	चतुर्णाम्, चतुर्णाम्
सप्तमी	—	—	चतुर्षु

पूर्वाचल विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में निर्धारित शब्दों के रूप

सर्व (देखिए इस पुस्तक का पृष्ठ २३), पितृ (पृ० ४४), सखि (३५)
सखि (पृ० ३५), त्रि (१५८-१६२) स्त्री (६८).
दधि (८६)। चतुर् (१६५-१६७) मघवन् (१०७, ११०) विद्वस् (१३८)
युष्मद् (१२६) अस्मद् (१३०)
इनके अतिरिक्त अन्य शब्दों के रूप यहाँ दिये जा रहे हैं।

आकारान्त पुल्लिङ्ग 'विश्वपा'

प्रथमा	विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः
द्वितीया	विश्वपाम्	"	विश्वपाः
तृतीया	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः
चतुर्थी	विश्वपे	"	विश्वपाभ्यः
पञ्चमी	विश्वपः	"	"
षष्ठी	"	विश्वपोः	विश्वपाम्
सप्तमी	विश्वपि	"	विश्वपासु
संबोधन	हे विश्वपाः	हे विश्वपौ	हे विश्वपाः

इकारान्त पुल्लिङ्ग 'पति'

प्रथमा	पतिः	पती	पतयः
द्वितीया	पतिम्	"	पतीन्
तृतीया	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
चतुर्थी	पत्ये	"	पतिभ्यः
पञ्चमी	पत्युः	"	"
षष्ठी	"	पत्योः	पतीनाम्
सप्तमी	पत्यौ	"	पतिषु
संबोधन	हे पतिः	हे पती	हे पतयः

इकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'मति'				ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'मातृ'		
प्रथमा	मतिः	मती	मतयः	माता	मातरौ	मातरः
द्वितीया	मतिम्	"	मतीः	मातरम्	"	मातृः
तृतीया	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
चतुर्थी	मत्यै, मतये	"	मतिभ्यः	मात्रे	"	मातृभ्यः
पञ्चमी	मत्याः मतेः	"	"	मातुः	"	"
षष्ठी	" "	मत्योः	मतीनाम्	"	मात्रोः	मातृणाम्
सप्तमी	मत्याम् मतौ	"	मतिषु	मातरि	"	मातृषु
संबोधन	हे मते	हे मती	हे मतयः	हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः

नकारान्त पुल्लिङ्ग 'पथिन्'

प्रथमा	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
द्वितीया	पन्थानम्	"	पथः
तृतीया	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
चतुर्थी	पथे	"	पथिभ्यः
पञ्चमी	पथः	"	"
षष्ठी	"	पथोः	पथाम्
सप्तमी	पथि	"	पथिषु
संबोधन	हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः

ईकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'सुधी' (उत्तम बुद्धि वाला)

प्रथमा	सुधि	सुधिनी	सुधीनि
द्वितीया	"	"	"
तृतीया	सुधिया, सुधिना	सुधिभ्याम्	सुधीभिः
चतुर्थी	सुधिये, सुधिने	"	सुधिभ्यः
पञ्चमी	सुधियः, सुधिनः	"	"
षष्ठी	"	सुधियोः सुधिनोः	सुधीनाम्
सप्तमी	सुधियि, सुधिनि	"	सुधिषु
संबोधन	हे सुधि, हे सुधे	हे सुधिनी	हे सुधीनि

उकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'मधु'

प्रथमा	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वितीया	"	"	"
तृतीया	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
चतुर्थी	मधुने	"	मधुभ्यः
पञ्चमी	मधुनः	"	"
षष्ठी	"	मधुनोः	मधूनाम्
सप्तमी	मधुनि	"	मधुषु
संबोधन	हे मधु	हे मधुनी	हे मधूनि

अदस् (= यह) पुल्लिङ्ग

अदस् (= यह) स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	असौ	अमू	अमी	असौ	अमू	अमूः
द्वितीया	अमुम्	"	अमून्	अमुम्	"	"
तृतीया	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
चतुर्थी	अमुष्यै	"	अमीभ्यः	अमुष्यै	"	अमूभ्यः
पञ्चमी	अमुष्मात्	"	"	अमुष्याः	"	"
षष्ठी	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्	"	अमुयोः	अमूषाम्
सप्तमी	अमुष्मिन्	"	अमीषु	अमुष्याम्	"	अमूषु

अदस् (नपुंसकलिङ्ग में)

प्रथमा	अदः	अमू	अमूनि
द्वितीया	"	"	"

(शेष रूप पुल्लिङ्ग के समान होते हैं ।)

तद् (= वह) पुल्लिङ्ग

तद् (= वह) स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	सः	तौ	ते	सा	ते	ताः
द्वितीया	तम्	"	तान्	ताम्	"	"
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः	तया	ताभ्याम्	ताभिः
चतुर्थी	तस्मै	"	तेभ्यः	तस्यै	"	ताभ्यः
पञ्चमी	तस्मात्	"	"	तस्याः	"	"
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्	"	तयोः	तासाम्
सप्तमी	तस्मिन्	"	तेषु	तस्याम्	"	तासु

तद् (= वह) नपुंसकलिङ्ग में

प्रथमा	तत्	ते	तानि
द्वितीया	तत्	ते	तानि

(शेष रूप पुल्लिङ्ग के समान होते हैं ।)

भवत् (= आप) पुल्लिङ्ग

भवत् (= आप) स्त्रीलिङ्ग—भवती

प्रथमा	भवान्	भवन्तौ	भवन्तः	भवती	भवत्यौ	भवत्यः
द्वितीया	भवन्तम्	"	भवतः	भवतीम्	"	भवतीः
तृतीया	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः	भवत्या	भवतीभ्याम्	भवतीभिः
चतुर्थी	भवते	"	भवद्भ्यः	भवत्यै	"	भवतीभ्यः
पञ्चमी	भवतः	"	"	भवत्याः	"	"
षष्ठी	"	भवतोः	भवताम्	"	भवत्योः	भवतीनाम्
सप्तमी	भवति	"	भवत्सु	भवत्याम्	"	भवतीषु
संबोधन	हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्तः	हे भवति	हे भवत्यौ	हे भवत्यः

बी०ए० संस्कृत हेतु पाठ्यग्रन्थ

प्रथम वर्ष

- ~~SHUK-IP-KAMU~~ 31/10/19
- * कुमारसम्भवम् (कालिदास) प्रथमसर्ग।
 - * किरातार्जुनीयम् (भारवि) प्रथमसर्ग।
 - * कादम्बरी (बाण) कथामुख-पम्पासरोवरर्णन तक।
 - * अभिज्ञानशाकुन्तलम् (कालिदास) निर्णयसागर संस्करण।
 - * अलंकार एवं छन्द-चन्द्रालोक एवं छन्दोमञ्जरी से (समीर आचार्य)

11/10/19

द्वितीय वर्ष

- * वैदिकसूक्तसंकलन (बी०ए० का पाठ्यग्रन्थ)
- * उपनिषत्सञ्चयनम् (गो०वि०वि० हेतु)।
- * लघुसिद्धान्तकौमुदी-सन्धिपर्यन्त।
- * नीतिशतकम् (भर्तृहारे विरचितम्) (समीर आचार्य)
- * संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (समीर आचार्य)

तृतीय वर्ष

- * भगवद्गीता अध्याय-2
- * काव्यादर्श (प्रथम परिच्छेद)
- * शिशुपालवधम् (माघ) प्रथम सर्ग
- * भामिनीविलास (अन्योक्तिविलास)
- * लघुसिद्धान्तकौमुदी (षड्लिङ्गप्रकरण)
- * लघुसिद्धान्तकौमुदी (समासप्रकरण)